कल्याण
CHITRA
वर्ष ४३] * * * * [अङ्क ८

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,६०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर भाद्रपद २०२६, अगस्त १९६९

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य भारतमें ९.०० विदेशमें १३.३५ (१५ शिलिंग) } जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥ { साधारण प्रति भारतमें ५० पै० विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर
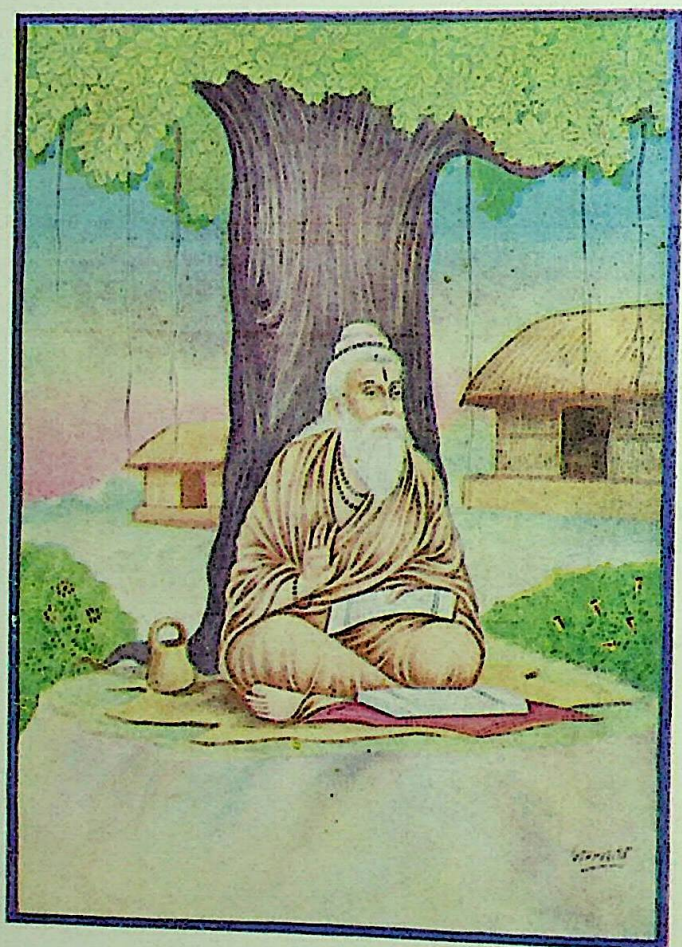
महर्षि वसिष्ठ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥

वर्ष ४३ } गोरखपुर, सौर भाद्रपद २०२६, अगस्त १९६९ { संख्या ८
पूर्ण संख्या ५१३

महर्षि वसिष्ठ

त्याग-तपस्या-क्षमामय साधुचरित्र पुनीत ।
कर्मकुशल, वक्ता कुशल, अति विद्वान् विनीत ॥
परम भक्त, ज्ञानी परम, शुचि ब्रह्मज्ञ वरिष्ठ ।
रघुकुलगुरु, श्रीराम-गुरु मृदुल महर्षि वसिष्ठ ॥

याद रक्खो—शरीर पाञ्चभौतिक है। माताके उदरमें रज और वीर्यसे इसका निर्माण हुआ है। यह अनित्य है। इसकी उत्पत्ति होती ही है नाशके लिये। आत्मा अमर है, वह नित्य है, सत्य है। शरीरका जन्म होता है, आत्माका नहीं। आत्मा तो चेतन-जीवरूपसे उसमें प्रविष्ट होता है। इसी प्रकार मृत्यु इस शरीरकी होती है—जीव-चेतनरूप आत्माकी नहीं। परंतु जबतक यह आत्मा जीव-चेतनरूपसे इस शरीर तथा शरीरके नाममें 'मैं-पन,' इसकी ममताके प्राणि-पदार्थोंमें 'मेरापन' रखता है, तबतक जन्म-मृत्युके क्लेशसे मुक्त नहीं होता।

याद रक्खो—इस क्लेशसे मुक्त होनेका साधन भी यह शरीर ही है। यदि जीव-चेतन शरीर तथा नाममें 'मैंपन' एवं प्राणि-पदार्थोंमें 'मेरापन' न रक्खे—(जो वास्तवमें है ही नहीं, केवल मिथ्या आरोप या कल्पना मात्र है)—और नित्य सत्य मुक्त अमृतरूप आत्मामें स्थित हो जाय तो प्रकृतिसे—बन्धनसे छूटकर सदाके लिये जन्म-मृत्युके क्लेशसे मुक्त हो सकता है।

याद रक्खो—माया बड़ी प्रबल है। वह जीवको भुलाये रखती है। इसीलिये वह शरीर, नाम तथा प्राणि-पदार्थोंसे अहंता-ममता हटानेकी बात तो सोचता ही नहीं, उलटा अधिक-अधिक अपने इस भ्रमको परम सत्य मानकर राग-द्वेषमें फँसता चला जाता है और शरीर तथा नामके लिये नये-नये पापकर्म करता रहता है। जीवनके नपे-तुले श्वास इसीमें बीत जाते हैं। काम-क्रोध-लोभ-परायण होकर वह मृत्युपर्यन्त चिन्ता, अशान्ति, दुःख तथा अभावका अनुभव करता हुआ पापकर्मकी भारी राशि लेकर उसका कुफल भोगनेके लिये इस शरीरको त्यागकर अन्यान्य आसुरी योनि अथवा अधम गतिमें चला जाता है। यों जीव आया तो था मानवशरीरमें मोक्षका साधन करके मुक्त होनेके लिये, सो तो हुआ ही नहीं; उलटे नरकों तथा नीच योनियोंका अधिकारी बनकर चला जाता है। यह बहुत बड़े पश्चात्ताप तथा दुःखका विषय है!

याद रक्खो—बीता हुआ समय फिर हाथ आता नहीं; अतः मानवजीवनका एक-एक क्षण बड़ी सावधानीके साथ आत्मोपलब्धि, भगवत्प्राप्ति या मुक्तिके साधनोंमें ही लगाओ। जो इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चेतना हमें प्राप्त हैं, उन सबके द्वारा भोगोंका परित्याग करके भगवान्का सेवन करो। हमारा सम्बन्ध अनात्मरूप भोग-जगत्से छूटकर एक मात्र आत्मासे या भगवान्से ही हो जाय। है तो अब भी वही, पर हम उसे भूलकर, अज्ञानवश अनात्मसे सम्बन्धित हो रहे हैं। मिथ्या होनेपर भी, जबतक यह है कि तबतक हमको—प्रकृतिस्थ पुरुषरूप जीव-चेतनको कर्मानुसार जन्म-मृत्युके चक्रमें तथा विविध योनियोंमें भटकना पड़ेगा ही। इसलिये इसमें जरा भी प्रमाद मत करो। एक क्षण भी अन्य चिन्तनमें मत बिताओ। पूरे मनसे, सम्पूर्ण बुद्धिसे भगवान्में जुड़ जाओ। इन्द्रियाँ अनवरत केवल भगवान्का ही स्पर्श प्राप्त करें, मन केवल उन्हींका मनन करे, बुद्धि उन्हींमें परिनिष्ठित रहे, आत्मा सदा 'स्वस्थ' रहे। भगवान्के सिवा अन्य कुछ रह ही न जाय। ऐसा कर सके तो जीवन सार्थक है। मानवजीवनका वास्तविक उद्देश्य सिद्ध हो गया। यह न हुआ तो जीवन व्यर्थ ही नहीं गया, अनर्थमय बीता—अनर्थ बटोरनेमें गया! और इसका परिणाम जो होगा, वह बहुत ही भयानक होगा। उस समय पश्चात्तापसे कुछ भी उपाय नहीं रह जायगा।

याद रक्खो—जबतक श्वास चल रहे हैं, शरीर स्वस्थ है—तभीतक सुगमतासे यह साधन कर सकते हो। अतः लग जाओ पूर्णरूपसे, और सफल कर लो अपना मानवजीवन!

'शिव'

ब्रह्मलीन परम पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतमय उपदेश

[पुराने पत्र]

(१)

सप्रेम राम राम ! कार्ड मिला ।××××। तुमने लिखा 'आपकी बातें और आपका स्नेह बहुत याद आ रहा है ।' सो तुम्हारे प्रेमकी बात है ।×××।

(१) रात्रिमें सोनेके समय गुण और प्रभाव-सहित भगवान्‌का ध्यान और नाम-जप करते हुए सोना चाहिये ।

(२) एकान्तमें साधन करनेके समय संध्या-गायत्री, भजन-ध्यान, पूजा-पाठ, स्तुति-प्रार्थना अर्थ और भावको समझकर, श्रद्धा और प्रेमपूर्वक, गुप्त तथा निष्काम भावसे भगवत्प्रीत्यर्थ उत्साह और तत्परताके साथ निरन्तर करना चाहिये ।

(३) चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते, काम करते समय भी श्रद्धा और प्रेमपूर्वक भगवान्‌के गुण-प्रभावसहित उनका ध्यान और नाम-जप निष्काम भावसे निरन्तर करना चाहिये ।

× × × ×

तुम्हारे लायक यही काम है कि माता-पिताको रोज प्रणाम करना चाहिये, उनकी आज्ञा माननी चाहिये एवं सत्यतापूर्वक कानूनका उल्लङ्घन किये बिना व्यापार करना चाहिये तथा भगवान्‌को हर समय याद रखनेके लिये विशेष प्रयत्नशील रहना चाहिये । उनकी कृपासे ही कल्याण सम्भव है ।

(२)

सप्रेम राम राम ।××××। तुमने लिखा कि 'हृदयमें प्रेमकी छटपटाहट कैसे लगे' सो भगवान्‌में श्रद्धा-विश्वास होनेसे प्रेमकी छटपटाहट हो सकती है । और भगवान्‌की स्मृतिमें एक पलकी भी भूल न हो—ऐसा लिखा सो भगवान्‌में अनन्य विशुद्ध प्रेम हो जानेपर फिर भगवान्‌की एक पलकी भी विस्मृति नहीं होती । तथा अनन्य विशुद्ध प्रेमसे ही 'तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलता' का जीवन बन सकता है । मन न लगना, उच्चाट-सा बना रहना श्रद्धा-प्रेमकी कमीके कारण होता है; अतः श्रद्धा-प्रेम होनेके लिये भगवान्‌की शरण होकर भगवान्‌से करुणभावपूर्वक प्रार्थना करनी चाहिये ।

(३)

सादर विनयपूर्वक हरि-स्मरण । आपका कार्ड यथासमय मिला । समाचार विदित हुए ।

भगवान्‌के चतुर्भुज रूपके विषयमें शास्त्रीय वर्णन श्रीमद्भागवतमें, विष्णुपुराणमें, महाभारतमें और रामायण आदि ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें जगह-जगह मिलते हैं । आप चाहें तो उन-उन स्थलोंमें पढ़ सकते हैं ।

इस विषयमें संतोंकी भावना और उनके उद्गार भी 'कल्याण'के भक्त-चरिताङ्क, 'संत-वाणी-अङ्क' और भक्तोंकी जीवनीकी पुस्तकोंमें मिलते ही हैं, उन्हें पढ़ लें । पत्रमें कहाँतक विवरण लिखा जा सकता है ।

आपने मेरे अनुभवकी बात पूछी सो अपने विषयमें अनुभवकी बात मैं कुछ नहीं बतलाना चाहता । मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि भगवान्‌का चतुर्भुज रूप अवश्य है । जो उसका दर्शन करना चाहता है, उसको उस रूपके दर्शन हो सकते हैं । कलियुगमें भी बहुत-से भक्तोंको उसके दर्शन हुए हैं, यह मेरा विश्वास है ।

इस रहस्यको जाननेकी यदि आपको जिज्ञासा है तो उसे वर्तमान जीवनकी परम आवश्यक जिज्ञासा

बनाइये । सबसे पहला स्थान उसीको दीजिये । जबतक जिज्ञासाकी पूर्ति न हो, चैनसे न रहिये । जिज्ञासा अवश्य पूर्ण हो सकती है ।

(४)

आपका पत्र मिला । आपके संक्षिप्त परिचयके साथ समस्त समाचार ज्ञात हुए ।

आप जिस प्रकारके विशेष मानवकी खोजमें हैं, वैसा मैं अपनेको नहीं मानता हूँ। मुझे तो एक साधारण मनुष्य समझना चाहिये ।

आपने मुझसे व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापन करनेकी इच्छा प्रकट की, यह आपके प्रेमकी बात है ।

आपने कुछ दिनोंसे भगवान्का स्मरण करना आरम्भ किया, यह प्रभुकी विशेष कृपा है । मनुष्य-शरीरका यही सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य होना चाहिये ।

सद्ग्रन्थोंके अवलोकनकी इच्छा होना भी सौभाग्यकी बात है । अभिलाषा होनेपर अवकाश भी मिल ही सकता है ।

उपदेश देनेका तो मैं अपना अधिकार नहीं मानता । हाँ, मित्रकी भाँति सलाह दे सकता हूँ ।×××

आपका हृदय भगवदाराधना करना चाहता है, यह बहुत ही उत्तम बात है । इसके लिये ग्रन्थ और श्रेष्ठ पुरुषोंका संग तो भगवान्की कृपासे मिलता रहेगा । जिस प्रभुने कृपा करके यह अभिलाषा प्रदान की है, वही आगेका सुयोग भी अवश्य देगा—यह दृढ विश्वास रखना चाहिये । उनका स्वभाव ही दीनोंपर दया करना और उनको अपनाना है, फिर चिन्ता क्या ?

आपने गायत्री-मन्त्रके विषयमें पूछा सो उस मन्त्रका छन्द गायत्री है, उसकी अधिष्ठातृ देवता गायत्री देवी हैं, इस कारण उसके ध्यानका वर्णन है । उपासना तो उस मन्त्रमें सूर्यके रूपमें परब्रह्म परमेश्वरकी ही बतायी गयी है । सूर्य उन प्रभुके ही प्रतीक हैं, उन्हींकी विभूति हैं । इस भावसे सूर्यका ध्यान-स्मरण किया जाय तो कोई दोष नहीं है, पर उसका अर्थ तो सर्वव्यापी परम प्रकाशस्वरूप सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमेश्वर भी है ही । अतः साधक अपनी रुचि, विश्वास और विवेकके अनुसार चाहे जिस रूपमें भगवान्का स्मरण, चिन्तन और ध्यान कर सकता है ।

आपने मुझसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की, इसके लिये मैं आपका आभारी हूँ । मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ ।

(५)

सविनय प्रेमपूर्वक हरि-स्मरण । आपका पत्र मिला । समाचार विदित हुए । उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

१—यह संसार अवश्य ही ईश्वरका चमत्कार है । इसकी विचित्र रचना और अद्भुत सौन्दर्यको देखकर जिस भाग्यशाली मनुष्यका उस सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वर प्रभुकी ओर आकर्षण हो जाता है, वह धन्य है ।

२—बुद्धि और विवेक देनेवाले अवश्य ही ईश्वर हैं और वे प्राणीको विवेकयुक्त मानवशरीर परम कृपा करके उसे अपने पास पहुँचनेके लिये ही देते हैं । तथापि मनुष्य भगवान्की अहैतुकी कृपासे मिले हुए उस विवेकका आदर नहीं करता । इस कारण जन्म-मृत्युके चक्रमें घूमता रहता है और दुःख भोगता रहता है ।

३—बुद्धि और कर्म करनेकी शक्ति अवश्य ही भगवान् देते हैं, पर उस विवेकके प्रकाशमें कर्म करना या विवेकका अनादर करके न करने योग्य कर्मोंका मोहवश आचरण करना—इसमें मनुष्य स्वतन्त्र है । इसलिये उसे अच्छे-बुरे कर्मोंका फल सुख और दुःखके रूपमें भोगना पड़ता है ।

४—आपने लिखा कि 'बुरे कर्मोंकी परिस्थिति

वर्तमानमें शीघ्र बनती है और अच्छे कर्मकी नहीं बनती–' सो ऐसी बात नहीं है। जो मनुष्य प्राप्त विवेकका आदर करके प्राप्त वस्तु, परिस्थिति और शक्तिका यथायोग्य सदुपयोग करता है, उसके लिये तो हरेक परिस्थिति अच्छे कर्ममें सहायक और साधनरूप है; किंतु जो विवेकका आदर नहीं करता, प्राप्त परिस्थितिका मोहवश दुरुपयोग करता है, उसके लिये अच्छी-से-अच्छी परिस्थिति भी बुरे कर्म करानेवाली बन जाती है। अतः इसमें ईश्वरका कोई दोष नहीं है। ईश्वर तो मानवको सचेत और सावधान करनेके लिये ही दुःख-रूप परिस्थिति प्रदान करता है। ईश्वर न तो दुष्टताका समर्थन करता है और न अच्छे कर्ममें बाधा ही उपस्थित करता है।

५–जीव-संख्या निश्चित नहीं है; क्योंकि जीव असंख्य हैं। केवल मनुष्य ही जीव हैं, अन्य पशु-पक्षी आदि जीव नहीं हैं, ऐसी बात नहीं है तथा इस पृथ्वीलोकके अतिरिक्त अन्य भी बहुत लोक-लोकान्तर हैं, उनमें भी असंख्य प्राणी निवास करते हैं। अतः आपका यह प्रश्न कि इस समय जनसंख्या अधिक क्यों हो रही है, युक्तियुक्त नहीं है तथा यह भी ठीक नहीं है कि हरिजनोंकी संख्या क्यों बढ़ रही है? आपको विचार करना चाहिये कि हरिजन, मुसल्मान, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि क्या मनुष्य नहीं हैं। क्या ईश्वरद्वारा दिये हुए विवेकका आदर करके अपने-अपने कर्त्तव्यका पालन करनेसे उनकी सद्गति नहीं हो सकती? यदि हो सकती है तो किसी भी जातिकी जन-संख्या बढ़े, इसमें चिन्ताकी क्या बात है?

६–हरिजनोंमें या अन्य किसी भी धर्मावलम्बी और समाजमें जो व्यभिचार और दुराचारकी वृद्धि है, उसका कारण उनका अविवेक है, न कि ईश्वर या धर्म।

७–आपने लिखा कि वर्तमानमें स्त्री-जातिकी दशा अत्यन्त शोचनीय है, स्त्री-जाति अपने कर्तव्यसे गिर रही है। सो महोदय! गहराईसे विचार करनेपर पता चलेगा कि स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुष-समाज ही अपने कर्त्तव्यसे अधिक गिरा है और गिर रहा है तथा स्त्रीसमाजके पतनमें भी पुरुष-समाजका ही अधिक दोष है।

८–आपने लिखा कि 'स्त्रीसमाज यदि स्वयं समझदार होता तो इतना पतन नहीं होता।' सो समझ अर्थात् विवेक-शक्ति तो स्त्रियोंको भी भगवान्‌ने दी है, पर उसके प्रकाशमें न तो स्त्रीसमाज चलता है और न पुरुषसमाज ही। अतः दोनोंका ही पतन हो रहा है। स्त्रीसमाजके पतनमें भी पुरुषसमाजका हाथ है; अतः पुरुषोंको सावधान होनेकी अधिक आवश्यकता है।

९–आपने स्त्रियोंके व्यभिचारकी बातका चित्र खींचा, पर यह नहीं सोचा कि इसमें अपराध पुरुषोंका ही अधिक है। क्या बिना पुरुषके सम्बन्धसे स्त्रियाँ व्यभिचार कर सकती हैं? क्या व्यभिचार करनेवाले पुरुष उतने ही अपराधी नहीं हैं, जितनी कि स्त्रियाँ? क्या अच्छे-अच्छे घरानेके पुरुष व्यभिचाररत नहीं हैं? वे दुराचरण नहीं करते? जो अपनेको साधु और भजनानन्दी तथा पण्डित और ब्रह्मज्ञानी कहनेवाले और धर्मके ठेकेदार परमार्थी कहलाते हैं, क्या उनमें बहुत-से ऐसे नहीं हैं जो स्त्रियोंको जालमें फँसाकर नाना प्रकारसे उनका पतन करते-कराते हैं? इस भयानक परिस्थितिमें केवल स्त्रीसमाजपर दोषारोपण करना अज्ञानके सिवा और कुछ नहीं है।

१०– लड़के-लड़कियोंका एक साथ पढ़ना केवल लड़कियोंके लिये ही बुरा नहीं है, लड़कोंके लिये भी उतना ही बुरा है, जितना कि लड़कियोंके लिये।

११–जिस प्रकार लड़कियाँ विवाहसे पूर्व भ्रष्ट हो

जाती हैं, वैसे ही लड़के भी हो जाते हैं। अतः दोनोंका ही संरक्षण तथा सुधार आवश्यक है।

१२—ईश्वर स्त्रियोंके लिये और पुरुषोंके लिये एक ही है। वह तो कर्तव्यका पालन न करके अनाचार और व्यभिचार करनेवाले सभीको यथायोग्य दण्ड देता है।

१३—व्यभिचार करनेवाला, करानेवाला, उसमें सहायता देनेवाला और उससे धन उपार्जन करनेवाला—ये सभी दण्डके भागी हैं। ईश्वरके कानूनके अनुसार सभीको दण्ड मिलेगा।

१४—आपने पूछा कि ऐसी स्त्री किसी पतिको मिले तो उस पतिको क्या करना चाहिये, सो इसका उत्तर एक नहीं हो सकता। वह पति जैसा होगा, उसके सामने जैसी परिस्थिति होगी और जिसके करनेसे पतिका और उस स्त्रीका दोनोंका हित होगा तथा समाजका हित होगा, वही पतिका कर्तव्य होगा।

१५—शासन तो धर्मनिरपेक्ष सरकारके हाथमें है। सरकार वोटोंपर अवलम्बित है। अधिक मनुष्य विवेकका अनादर करनेवाले हैं। इस परिस्थितिमें धार्मिक शासन कैसे हो?

१६—स्त्री अर्धाङ्गिनी मानी गयी है, दोनों फलके भागी होते हैं—यह बात शास्त्रोंमें लिखी है। पर साथमें यह भी लिखा है कि जो स्त्री पतिकी सेवा करती है, उसकी आज्ञा मानती है, वही उसके पुण्यका हिस्सा पाती है, अन्य नहीं तथा यह भी लिखा है कि पुरुषके द्वारा किये हुए पापका हिस्सा स्त्रीको नहीं भोगना पड़ता। स्त्रीके द्वारा किये जानेवाले पापका हिस्सेदार पुरुष होता है, यह ठीक है; क्योंकि उसको नियन्त्रणमें रखनेका अधिकार पुरुषको है। यदि उस अधिकारकी रक्षा स्त्री नहीं करती तो उसके द्वारा किये हुए पापका भी भागी पुरुष नहीं होता, अपने किये हुए पापका फल केवल स्त्री ही भोगती है।

१७—विवाह-शादियोंमें व्यर्थका खर्च बहुत बढ़ गया है, यह सत्य है। इस तरफ लोगोंका ध्यान नहीं है, ऐसी बात तो नहीं है, पर बहुत कम है। इसके दुष्परिणामको तो सभी देख रहे हैं। सुधार भी चाहते हैं; पर स्वयं नहीं करना चाहते, दूसरोंसे कराना चाहते हैं। एक दूसरेके दोषोंको देखते हैं और चाहते हैं कि इसका सुधार हो, पर न तो अपने दोषोंको देखना चाहते हैं और न उनके सुधारका प्रयत्न करते हैं, तब सुधार कैसे हो?

१८—आपका यह अनुमान गलत है कि ८० प्रतिशत स्त्रियाँ बदचलन हैं। संख्या देखी जाय तो औरतोंकी अपेक्षा पुरुष ही अधिक संख्यामें बदचलन और व्यभिचारी मिलेंगे।

१९—ईश्वर दुराचारीको सहयोग कभी नहीं देता, सदाचारीको सहयोग हर हालतमें देता है; यह निश्चय रखना चाहिये।

२०—स्त्री-पुरुषोंको व्यभिचारसे बचाये जानेका उपाय पूछा सो हरेक स्त्री और पुरुषको, जो कि दूसरोंको इससे बचाना चाहते हैं, स्वयं संयमी और ब्रह्मचारी बनना चाहिये तथा दुष्कर्ममें फँसे हुए स्त्री-पुरुषोंके हितकी दृष्टिसे प्रेमपूर्वक उनको समझाना चाहिये, भोगोंके दुःख और दुष्परिणामसे उन्हें अवगत कराना चाहिये।

२१—धर्म सभी देश, जातिमें उत्पन्न सभी मनुष्योंके लिये है। उसे समझनेके लिये विवेकशक्ति भी सबको मिली है; पर मोहवश दुःखको ही सुख मानकर लोग अपने विवेकका आदर नहीं करते, इसका क्या उपाय?

धर्म क्या है? इस विषयमें एक छोटी-सी पुस्तक गीताप्रेससे प्रकाशित हुई है, उसे देख सकते हैं।

२२—आपने लिखा कि स्त्रीकी इच्छा नहीं है, पर वह बलात् बुरे आदमीके पंजेमें पड़ जाती है,

सो ठीक है, किंतु सभी जगह ऐसी बात नहीं है। वास्तवमें किसकी क्या इच्छा है, पता नहीं लगता। व्यभिचार प्रायः दोनोंकी मर्जीसे ही होता है।

२३–ईश्वर निर्दयी नहीं है, परम दयालु है; उसके समान दयालु दूसरा कोई है ही नहीं। जिसने हमें रोशनीका सुख देनेके लिये सूर्य बनाया तथा वायु-जल आदि उपयोगी वस्तुएँ प्रदान कीं और बदलेमें कुछ भी कर नहीं लगाया; उस ईश्वरको भला आप निर्दयी कैसे कह सकते हैं?

२४–यदि आप सचमुच यह चाहते हैं कि ईश्वरका चिन्तन चौबीसों घंटे होता रहे तो उसमें कोई विघ्न नहीं डाल सकता, संसारका चक्र आपको कभी नहीं फँसा सकता। आप संसारको अपना मानते हैं, उससे सम्बन्ध जोड़ते हैं, प्रेम करते हैं, तभी संसारका चिन्तन होता है एवं ईश्वर-चिन्तन नहीं होता। यदि आप संसारको क्षणभङ्गुर समझकर उससे सम्बन्ध छोड़ दें और ईश्वरको अपना नित्य साथी मानकर उससे सम्बन्ध जोड़ लें तथा उसमें अनन्य प्रेम कर लें तो अपने-आप उसका निरन्तर चिन्तन होने लग सकता है।

२५–संसारसे छूटनेका उपाय अवश्य है, उसके लिये जंगलमें जाना आवश्यक नहीं है। आप जहाँ और जिस परिस्थितिमें हैं, वहीं रहते हुए संसारसे सम्बन्ध छोड़ सकते हैं; क्योंकि यह सम्बन्ध आपका माना हुआ है, सच्चा नहीं है। अवश्य छूटनेवाला है, प्रतिदिन छूटता है। वह सहज ही परिवर्तनशील और अनित्य है। प्राप्त ज्ञानका आदर करके यदि विचार करेंगे तो मालूम होगा कि संसारमें कोई भी व्यक्ति, कोई भी वस्तु, अवस्था या परिस्थिति अपनी नहीं है। अतः इन सबको भगवान्‌का समझकर इनसे ममता उठा लेनेपर और भगवान्‌को अपना नित्य साथी और परम सुहृद् मानकर, उससे सम्बन्ध जोड़कर आप जब चाहें तभी संसारसे छूट सकते हैं।

२६–झूठ-कपट करनेवाले भी कोई सुखी नहीं हैं, उनके अभावकी भी पूर्ति नहीं होती, धनवान् भी दुखी देखे जाते हैं। जिसने इस जगत्‌को बनाया है वह स्वयं इसका भरण-पोषण करता है। मनुष्य अज्ञानसे अपनेको भरण-पोषण करनेवाला मान लेता है, वास्तवमें उसका किया कुछ होता भी नहीं है। अतः ईश्वरपर निर्भर होकर निश्चिन्त और निर्भय हो जाना चाहिये। यही सर्वोत्तम मार्ग है।

२७–मोक्ष (जीवन्मुक्ति) यहीं है और वर्तमानमें ही शरीरके रहते-रहते ही मिलता है। सत्कर्मका फल उसीको मिलता है, जो चाहता है। किंतु जो साधक जगत्‌के समस्त प्राणियोंको भगवान्‌का समझकर उनके हितके लिये भगवान्‌के आज्ञानुसार उनकी दी हुई शक्ति और वस्तुसे उनके दिये हुए विवेकके प्रकाशमें कर्म करता है एवं बदलेमें किसी प्रकारका सुखभोग नहीं चाहता, उसे कर्मका फल नहीं भोगना पड़ता। वह सदा रहनेवाले नित्य नव भगवत्प्रेमरूप रसमय परम आनन्दमें विभोर रहता है और सदाके लिये मुक्त हो जाता है।

२८–रिश्वतकी परिभाषामें यह बात आती है कि जिसके लेनेका कोई हक न हो, जो छिपाकर चोरीसे ली जाय, जिसके प्रकट होनेसे दण्ड मिलनेका भय हो; वह चाहे किसी भी रूपमें ली जाय, रिश्वत ही है।

२९–आर्यसमाजके ग्रन्थमें किस भावसे कौन-सी बात लिखी गयी है, यह तो उसके लेखक ही बतला सकते हैं; पर आपने जिस बातका जिक्र किया है, उसे शास्त्रकारोंने 'नियोग'के नामसे लिखा है। उसका विधान बहुत ही कठिन है। स्त्री और पुरुष दोनोंमें

भोगकामनाका सर्वथा अभाव होना चाहिये, वंशकी रक्षा ही एकमात्र उसका उद्देश्य होना चाहिये, पुरुष उसी कुटुम्बका स्त्रीके पतिका भाई-जैसा हो। इसके सिवा और भी कई कठिन-कठिन नियम हैं जो कि वर्तमान समयमें पालन होने सम्भव नहीं। अतः इस समय उसका सर्वथा निषेध है तथा अनावश्यक भी है।

३०—किसी भी स्त्री या पुरुषको मार डालना अवश्य ही पाप है, चाहे वह कितना ही दुष्ट क्यों न हो!

भगवन्नाम-स्मरण

[पूज्यपाद योगिराज अनन्त श्रीदेवरहवा बाबाका उपदेश]

(प्रेषक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी)

संसारमें तीन प्रकारके कष्ट हैं—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। अपने शरीरसम्बन्धी जो कष्ट हैं, उन्हें हम 'आध्यात्मिक' कहते हैं और आधिदैविक कष्ट वे हैं जो देवोंद्वारा—जैसे अग्निकाण्ड, सूखा पड़ जाना, बाढ़ आ जाना इत्यादि मनुष्योंको भोगने पड़ते हैं और आधिभौतिक कष्ट वे हैं जो जीवोंद्वारा मनुष्यको भोगने पड़ते हैं। जैसे साँपका काटना, बिच्छूका डंक मारना, मच्छरोंका काटना तथा अन्यान्य छोटे-बड़े जीवोंद्वारा मनुष्य-शरीरपर आक्रमण। इन्हीं तीन कष्टों या तापोंसे मनुष्य व्याकुल रहता है। इनसे मुक्ति पानेकी सबकी सतत इच्छा होती है और तदनुकूल लोग भाँति-भाँतिके प्रयत्न भी करते हैं। उन सब प्रयत्नोंमें सबसे सरल और सुलभ वस्तु है—भगवन्नाम।

भगवन्नामकी महत्ता और संतोंके इसका अनुभव यदि विस्तारसे बताया जाय तो कितनी पोथियाँ तैयार हो जायँगी, लेकिन तब भी उसका अन्त नहीं होगा। यहाँ संक्षेपमें इतना कहना पर्याप्त है कि भगवन्नाम सभी अमङ्गलोंका नाश करनेवाला और जीवोंको शाश्वत सुख देनेवाला है। भगवान्‌के नाम और यशके स्मरणमें अमोघ शक्ति है। इसके समान महत्त्वपूर्ण और पुण्यप्रद संसारमें कोई वस्तु नहीं है। इस कलिकालमें तो इसीकी विशेष महानता है। अतएव हर एक व्यक्तिका यह कर्तव्य होना चाहिये कि वह ऐसा अभ्यास बना ले कि उसके द्वारा निरन्तर भगवान्‌का स्मरण हो तथा सभी अवस्थाओंमें भगवन्नामका जप हो। उसमें कभी त्रुटि न हो। बड़े दुःखकी बात है कि हम संसारकी भोग-वस्तुओंमें अपना जीवन बिताते हैं, किंतु जब भगवान्‌के नामस्मरणके लिये कहा जाता है तो उत्तर मिलता है कि 'अभी समय नहीं है, फिर कभी कर लिया जायगा, इसके लिये अभी कौन जल्दी है?' यह है—आजकलके लोगोंकी मनोवृत्ति।

इस मनोवृत्तिसे पतन–विनाश निश्चित है। यह लोक भी गया और परलोक भी चला जायगा। यह मनुष्य-जीवन साधन-क्षेत्र है, ऐसा सबको स्मरण रखना चाहिये। गोस्वामी तुलसीदासने कैसा यथार्थ कहा है—

'साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।
पाइ न जे परलोक सँवारा॥'

इसलिये सबको अपने जीवनमें ऐसा नियम बना लेना चाहिये कि बिना किसी त्रुटिके वह प्रति-दिन जैसे अन्य सांसारिक काम करता है, भगवन्नामका भी स्मरण अवश्य करे। सब धर्मग्रन्थों और वेदोंका भी यही सार है कि—

'नामैव वेदसारांशं सिद्धान्तं सर्वदा शिवम् ।'

सब धर्मग्रन्थोंमें और वेदोंमें जो प्रतिपादित विषय हैं—उनमें जो सार वस्तु है वह है भगवन्नाम-स्मरण । गीतामें स्वयं भगवान्ने कहा है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

अर्थात् 'जो व्यक्ति अनन्यभावसे मुझ परमेश्वरकी उपासना करते हैं, उन भक्तोंका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ ।'

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

इसलिये सर्व-समर्पणकर भगवान्की शरणमें जाना चाहिये । उन्हींकी एकमात्र कृपासे परम सुख-शान्ति प्राप्त होगी, अन्यथा नहीं ।

कभी-कभी लोग ऐसा प्रश्न करते हैं कि 'भगवन्नाम-जपसे हमें कोई सफलता नहीं मिली ।' —तो ऐसा हो सकता है और उसमें कारण है 'नामापराध' । प्रायः लोग ऐसा करते हैं कि वे कुकर्मसे परहेज नहीं करते । कुकर्म छोड़ना नहीं चाहते । पाप करते रहेंगे और नामसे उसको दूर करते रहेंगे । इस प्रकार नामके बलपर जो कुकर्म करते हुए नाम लेते रहेंगे, उनकी कुकर्मसे मुक्ति नहीं हो सकती । इसीको 'नामापराध' कहा गया है ।

गुरोरवज्ञा श्रुतिशास्त्रनिन्दनं
तथार्थवादो हरिनामकल्पनम् ।
नाम्नो बलाद् यस्य हि पापबुद्धि-
र्न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः ॥

गुरुकी अवज्ञा करना, श्रुति और धर्मशास्त्रकी निन्दा करना, आचार्योंकी बातोंपर विश्वास न करना, हरिके नाम और यशको केवल कल्पना समझना, नामजपका आश्रय लेकर निषिद्ध (पाप) कर्म करना—यह पापबुद्धि है । ऐसे नाम-जापक पापियोंकी कभी शुद्धि नहीं हो सकती ।

भाव यह है कि साधकको नामापराध-दोषसे बचकर भगवन्नामका स्मरण और चिन्तन करना चाहिये । तभी वह फलदायक और सुख-शान्ति दे सकता है ।

भगवन्नाम-स्मरणका फल क्या है, इसको भी थोड़ा समझ लेना चाहिये । ये बृहस्पतिके वाक्य हैं जो उन्होंने इन्द्रके प्रति कहे थे—

स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिले
दत्ता द्विजेभ्यो धरा
यज्ञानां च हुतं सहस्रमयुतं
देवाश्च सम्पूजिताः ।
स्वाद्वन्नेन सुतर्पिताश्च पितरः
स्वर्गं च नीताः पुन-
र्यस्य ब्रह्मविचारणेन क्षणम-
प्याप्नोति धैर्यं मनः ॥

'जिसने क्षणमात्र भी परब्रह्म परमात्माका समाहित मनसे चिन्तन किया, उसने समस्त तीर्थोंके जलमें स्नान कर लिया, राजा बलिकी तरह सम्पूर्ण पृथ्वीका सत्पात्र ब्राह्मणोंको दान कर दिया, कोटि यज्ञोंके अनुष्ठानका फल प्राप्त कर लिया, देवताओंके भलीभाँति पूजनका भी फल प्राप्त कर लिया और अपने पितरोंको सुस्वादु अन्नसे तृप्त करके उन्हें स्वर्गलोकमें भेज दिया ।' ऐसा फल भगवन्नाम-स्मरण करनेवाले व्यक्तिको होता है ।

यजुर्वेदका भी मन्त्र है—

न तस्य प्रतिमास्ति, यस्य नाम महद्यशः ॥

'जिस ब्रह्मके नाम और यशका महान् महत्त्व है उसकी प्रतिमा—नामकी कोई उपमा नहीं ।' वैदिक कालसे लेकर आजतक सभी धर्माचार्योंने उस परमात्माको अनन्त शक्ति, अनन्त गुण, अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त सौन्दर्य-स्वरूप, सर्वाधार, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान्

कहा है। उसीका सांनिध्य प्राप्त करना ही मनुष्य-जीवनका लक्ष्य है, जिसको यह मनुष्य भूला हुआ है। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है—

'कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥'

भगवन्नामकी महिमा अनन्त है। स्वयं राम भी उसका वर्णन नहीं कर सकते। सारांश यह है कि भगवन्नामके स्मरण और चिन्तनमें अपूर्व बल है। इसके प्रभावसे आत्मामें दिव्य प्रकाश प्राप्त होता है, चित्तके सब विकार दूर हो जाते हैं और परमात्माके साथ धीरे-धीरे एकात्मताका अनुभव होने लगता है। भगवन्नामके प्रतापसे ही अनेकों ऋषि-मुनि, ध्रुव-प्रह्लाद आदि परम गतिको प्राप्त हुए। इस कलिकालमें तो उद्धार पानेका केवल एक ही साधन है और वह है भगवन्नाम-का स्मरण और चिन्तन—'कलिजुग केवल नाम अधारा।' इसीको सदा याद रखते हुए सबको नित्य भगवन्नामका नियमपूर्वक स्मरण करना चाहिये।

जीवनमें पालन करनेयोग्य

[मेरे प्रति सद्भाव, स्नेह और प्रीति रखनेवाले बहुत-से पुरुष और देवियाँ बार-बार पूछा करते हैं कि 'मेरा आध्यात्मिक सिद्धान्त तथा किस विषयमें क्या विचार है, मैं लोगोंको कैसे विचार तथा आचरण-वाले देखना चाहता हूँ। यह स्पष्टरूपसे अलग-अलग बतला दूँ।' यद्यपि मेरे सिद्धान्त या विचार जरा भी नवीन न होकर शास्त्रीय ही हैं, अतएव 'मेरे' सिद्धान्त-विचारके रूपमें कुछ भी कहनेकी आवश्यकता नहीं; तथापि सबके स्नेहाग्रहको देखकर मैं यहाँ अपने माने हुए आदर्श प्रिय सिद्धान्त, विचार, आचार, कर्तव्य, बर्ताव, व्यवहार आदि बहुत-से विषयोंपर लिख रहा हूँ। इनमें कई बातें ऐसी होंगी, जिनको रुचि तथा विचार-भेदसे या परिस्थितिवश सब नहीं मान सकते। कुछके सम्बन्धमें विरोधी विचार भी हो सकते हैं, कुछको वर्तमान समयके अनुकूल भी नहीं समझा जा सकता, कुछ बातोंमें अपने विचारानुसार दोष तथा आचरण करनेपर हानि भी प्रतीत हो सकती है। पर मैं इसलिये लिख भी नहीं रहा हूँ कि इनको अक्षरशः स्वीकार कर लिया जाय या इन्हें माननेके लिये कोई बाध्य हों। मैं अपने स्नेही सज्जनोंके अनुरोध-पर अपने मनके आदर्श सिद्धान्त-विचार लिख रहा हूँ। मानने, आंशिक मानने, सर्वथा न माननेमें सभी स्वतन्त्र हैं। हाँ, मेरी समझसे इसमें लिखी सभी बातें शास्त्रानुमोदित और कल्याणकारिणी होंगी तथा उनके मानने एवं आचरणमें लानेपर भारतीय संस्कृति तथा धर्मके रक्षण एवं क्रियात्मक प्रचारके साथ ही उनको न्यूनाधिकरूपमें लौकिक, पारलौकिक और पारमार्थिक लाभ भी निश्चय ही होगा।]

सिद्धान्त

१—भगवान् एक ही हैं। वे ही निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार और सगुण-साकार हैं। लीलाभेदसे उन एकके ही अनेक नाम, रूप तथा उपासनाके भेद हैं। जगत्‌के सारे मनुष्य उन एक ही भगवान्‌की विभिन्न प्रकारसे उपासना करते हैं, ऐसा समझे।

२—मनुष्य-जीवनका एकमात्र साध्य या लक्ष्य मोक्ष, भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेमकी प्राप्ति ही है, यह दृढ़ निश्चय करके प्रत्येक विचार तथा कार्य इसी लक्ष्यको ध्यानमें रखकर इसीकी सिद्धिके लिये करे।

३—शरीर तथा नाम आत्मा नहीं है। अतः शरीर तथा नाममें 'अहं'भाव न रखकर यह निश्चय रक्खे कि मैं विनाशी शरीर नहीं, नित्य आत्मा हूँ। उत्पत्ति, विनाश, परिवर्तन शरीर तथा नामके होते हैं—आत्माके कभी नहीं।

४—भगवान्‌का साकार-सगुण-स्वरूप नित्य-सत्य सच्चिदानन्दमय है। उसके रूप, गुण, लीला सभी

भगवत्स्वरूप हैं । वह मायाकी वस्तु नहीं है । न वह उत्पत्ति-विनाशशील कोई प्राकृतिक वस्तु है ।

५—किसी भी धर्म, सम्प्रदाय, मतसे द्वेष न करे; किसीकी निन्दा न करे । आवश्यकतानुसार सबका आदर करे । अच्छी बात सभीसे ग्रहण करे; पर अपने धर्म तथा अपने इष्टदेवपर अटल, अनन्य श्रद्धा रखकर उसीका सेवन करे ।

६—अपने इष्ट तथा अपने साधनको हीन न समझकर अपने लिये उसीको सर्वश्रेष्ठ समझे; पर अभिमान करके दूसरोंकी निन्दा कभी न करे । दूसरोंके इष्टदेवको अपने ही इष्टदेवका उनके द्वारा पूजित एक रूप समझे ।

७—किसी भी देवताकी, साधनकी निन्दा न करे । किसी भी पूजा-स्थल—मन्दिर, मठ, विहार, उपासरा, आश्रम, गुरुद्वारा, मस्जिद, गिर्जा, अगियारी आदिका असम्मान कभी न करे ।

८—जहाँतक बने, तन-मन-धनसे सभीकी यथायोग्य सेवा करे । सब प्राणियोंमें भगवान् हैं—यह समझकर सभीका सम्मान करे, सभीका हित करे और सभीको सुख पहुँचावे । किसीका अपमान-अहित न करे; किसीको दुःख न पहुँचावे ।

९—मानवमात्रमें परस्पर प्रेम बढ़े, सभी एक-दूसरेकी सहायता करें, सबका सब हित करें, व्यक्तिगत या दलगत संकुचित स्वार्थकी प्रतिष्ठा न हो, बल्कि विशाल विश्वमय-स्वार्थ हो, ऐसे विचार तथा कार्य करें ।

१०—संसारके भोगमात्र अनित्य, अपूर्ण तथा सुखरहित, दुःखालय और दुःखोंके उत्पत्ति-स्थान हैं—ऐसा समझकर उनमें आसक्ति न रक्खे ।

११—अपनी संस्कृति, पूर्वज, शास्त्र, पवित्र स्थान, संस्कृत भाषा आदिपर श्रद्धा हो और इसमें गौरवका अनुभव करे ।

१२—कर्मफलभोगका सिद्धान्त सर्वथा सत्य है । अच्छे-बुरे कर्मका फल इस लोक या परलोकमें भोगना ही पड़ता है । कर्मानुसार स्वर्ग, नरक, देवयोनि, मनुष्ययोनि, पितृयोनि, प्रेतयोनि, कूकर-शूकरादि आसुरी योनियोंमें तथा लोकोंमें जाना पड़ता है—यह सब सर्वथा सत्य है । बीज-फल-न्यायसे लघुकर्मके लंबे फल होते हैं और शास्त्रीय प्रायश्चित्तसे कर्म कटते भी हैं । देवाराधन, ईश्वराराधनसे नवीन प्रारब्धका निर्माण भी होता है ।

१३—वर्तमान निषिद्ध कर्म करनेवाला पूर्व-प्रारब्धानुसार सुखी देखा जा सकता है । वर्तमान कर्मका फल उसे भविष्यमें मिलेगा । इसी प्रकार वर्तमानमें सत्कर्म करनेवाला पिछले पापोंके प्रारब्धवश दुखी देखा जा सकता है । इस सत्कर्मका फल उसे आगे मिलेगा । पर यह निश्चित है कि बुरे कर्मका अच्छा फल और अच्छे कर्मका बुरा फल नहीं हो सकता ।

१४—तत्त्वज्ञान तथा भगवच्छरणागतिसे समस्त कर्मराशि भस्म हो जाती है ।

मनके कार्य

१—कभी किसीका बुरा न चाहे, बुरा होता देखकर प्रसन्न न हो ।

२—व्यर्थ-चिन्तन, दूसरेका अनिष्ट-चिन्तन, काम-क्रोध-लोभ आदिके निमित्तसे चिन्तन न करे ।

३—किसीकी कभी हिंसा न करे ।

४—भगवान्‌की कृपापर विश्वास रक्खे । भगवान्‌का चिन्तन करे । उनके लीला, नाम, गुण, तत्त्वका चिन्तन करे । संतोंके चरित्रोंका, उनके उपदेशोंका चिन्तन करे ।

५—विषयोंका चिन्तन न करके भगवान्‌का चिन्तन करे ।

६—पुरुष स्त्री-चिन्तन और स्त्री पुरुष-चिन्तन न करे ।

७–नास्तिक, अधर्मी, अनाचारी, अत्याचारी तथा उनकी क्रियाओंका चिन्तन न करे ।

वाणीके कार्य

१–किसीकी निन्दा-चुगली न करे ।

२–झूठ न बोले ।

३–कटु शब्द, अपशब्द न बोले। किसीका अपमान न करे। किसीको शाप न दे ।

४–नम्रतायुक्त मधुर वचन बोले ।

५–हितकारक वचन बोले। किसीका अहित न करे।

६–व्यर्थ न बोले। अभिमानके वाक्य न बोले।

७–भगवद्गुण-कथन, शास्त्रपठन, नामकीर्तन, नामजप करे। पवित्र पद-गान करे।

८–अपनी प्रशंसा कभी न करे ।

९–जिसमें गौ-ब्राह्मणकी, गरीबकी या किसीके भी हितकी हानि होती हो, ऐसी बात न बोले ।

शरीरके कार्य

१–किसी प्राणीकी हिंसा न करे। किसीको मारे-पीटे नहीं ।

२–अनाचार-व्यभिचार न करे ।

३–सबकी यथायोग्य सेवा करे ।

४–अपना काम अपने हाथसे करे ।

५–गुरुजनोंको प्रतिदिन प्रणाम करे ।

६–पवित्र स्थानोंमें, तीर्थोंमें, सत्संगोंमें संतोंके दर्शन-हेतु जाय ।

७–मिट्टी जल आदिसे पवित्र रक्खे। शुद्ध जलसे स्नान करे ।

८–पाखानेमें टबमें बैठकर, नंगा होकर स्नान न करे ।

९–मल-मूत्रका त्याग करके हाथ धोये, कुल्ला करे।

१०–खड़ा होकर पेशाब न करे ।

११–जहाँ-तहाँ थूके नहीं; अपवित्र, दूषित पदार्थोंका स्पर्श न करे ।

१२–रोगकी जहाँतक हो, आयुर्वेदिक चिकित्सा कराये ।

१३–देशी दवाइयोंमें भी तथा आवश्यक होनेपर एलीपैथिक आदि दवा सेवन करनी पड़े तो उनमें भी, जिनमें कोई जान्तव पदार्थ हो, उनका प्रयोग बिल्कुल ही न करे। प्राकृतिक चिकित्सापर, खान-पानके संयम आदिपर विशेष ध्यान रक्खे। रामनामकी दवा ले ।

दैनिक पालनीय नियम

१–सूर्योदयसे पहले उठे ।

२–उठकर भगवान्‌का स्मरण करे तथा बड़ोंको प्रणाम करे ।

३–जिसके यज्ञोपवीत हो, वह कम-से-कम दो कालकी संध्या और एक माला गायत्रीका जाप यथाधिकार अवश्य करे। सम्भव हो तो तर्पण भी करे । सभी लोग विश्वासपूर्वक प्रतिदिन नियमित भगवत्प्रार्थना करें ।

४–भगवान्‌के नामका जप अधिक-से-अधिक करे। कम-से-कम २१,६०० नामजप जरूर कर ले ।

५–उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, भगवद्गीता तथा अपने-अपने धर्मग्रन्थ आदिका यथायोग्य नित्य पाठ–अध्ययन करे। विचार तथा जीवनको सात्त्विक बनानेवाले अन्यान्य विविध सद्ग्रन्थोंका पाठ–स्वाध्याय करे।

दान—

१–कुछ-न-कुछ प्रतिदिन दान करे ।

२–जिसको, जहाँ, जब, जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, उसको, वहाँ, उस समय, वह वस्तु, अपने पास हो तो, दे दे ।

३–दान सम्मानपूर्वक करे, अवज्ञापूर्वक नहीं ।

४—भगवान्‌की वस्तु भगवान्‌की सेवामें लगी, यह समझे; न अभिमान करे, न दान लेनेवालेपर अहसान करे, न उसका लोक-परलोकमें फल चाहे, न बदला चाहे।

५—दान यदि गुप्तरूपसे हो तो सर्वोत्तम है।

६—तीर्थमें, पर्वके समय, पुण्य तिथियोंपर, माता-पितादिके श्राद्धके दिन भी दान करे।

७—धन, जमीन, अन्न, वस्त्र, जल, दवा, सत्परामर्श, आश्रय, अभय, मधुर वचन, मार्ग-दर्शन—जिसके पास जो हो, जितने परिमाणमें हो—वह, उतने ही परिमाणमें आवश्यकतानुसार नम्रता तथा सम्मानके साथ दान करे।

भोजन—

१—सादा, सात्त्विक, सहजमें पचनेवाला करे, कम करे। भूखसे ज्यादा कभी न खाये।

२—प्याज, लहसुन तथा उत्तेजक तामस वस्तु न खाये; मसाला कम-से-कम खाये। नशीली चीज न खाये-पीये।

३—किसीकी जूठन कभी न खाये-पीये।

४—भोजन स्वास्थ्य-रक्षा तथा पवित्र मनके निर्माणके लिये करे; स्वादके लिये नहीं।

५—मांस, मछली, शराब, अंडा आदिका सेवन कभी भी किसी भी रूपमें न करे।

६—जहाँ मांस पकता हो, वहाँ पका हुआ भोजन न करे।

७—सात्त्विक, सदाचारी पुरुष, माता, पत्नी आदिके हाथका भोजन सर्वोत्तम है।

८—हर किसीके यहाँ तथा हर किसीके हाथका एवं हरेक होटलमें भोजन न करे।

९—काँचके, चीनी मिट्टीके बरतनमें न खाये-पीये। बिना मँजे-धोये बरतनोंमें न खाये-पीये।

१०—स्वास्थ्यनाशक चाट, बाजारू चीजें, क्रीम आदिका सेवन न करे।

११—बीमारीकी स्थितिको छोड़कर स्नान किये बिना कुछ भी न खाये-पीये।

१२—बीच-बीचमें व्रतोपवास अवश्य करता रहे।

१३—भोजनके पहले हाथ-मुँह धोये। भोजनके पश्चात् मुख-प्रक्षालन करे, कुल्ला करे, हाथ धोये। जूठा हाथ जरूर धो ले।

वस्त्र—

१—कम-से-कम पहने।

२—सादे, स्वच्छ, कम कीमतके व्यवहार करे; जहाँ-तक बने, हाथसे कते सूतके हाथसे बुने कपड़ेका व्यवहार करे।

३—भड़कीले, फैशनदार, अधिक कीमतके न पहने।

४—अधिक संग्रह न करे।

५—लज्जारक्षा, शीत-ग्रीष्म आदिसे रक्षाके लिये कपड़े पहने, शौकीनी तथा दिखावेके लिये नहीं।

६—जिनमें हिंसा होती हो, वैसे कपड़े न पहने।

७—देशी ढंगके कपड़े पहने, विदेशी ढंगके नहीं।

शिक्षा—

१—शिक्षामें धर्म, सदाचार, मानव-धर्म, नीति, संयम तथा सर्वहितभावकी शिक्षा अवश्य रहे।

२—लड़के-लड़कियोंको एक साथ न पढ़ाया जाय। सह-शिक्षा न हो। ऐसे शिक्षालयोंमें बच्चोंको न भेजे।

३—जहाँ केवल विदेशी भावोंकी शिक्षा-आचार सिखाये जाते हों, उनमें बच्चोंको न भेजे।

४—बच्चे माता-पिताको नित्य प्रणाम करें; उन्हें माताजी-अम्माजी, पिताजी-बाबूजी आदि कहें; मम्मी, डैडी, पापा आदि न कहें।

५–आजकलके दूर-दूरके छात्राश्रमोंमें बच्चोंको भेजना बहुत हानिकर है। वहाँ अधिकांशमें अनीति, उच्छृङ्खलता, असदाचार, नास्तिकता, खान-पान-विवाह आदिमें किसी विधि-निषेधको न मानने, गुरुजनोंका अनादर करने तथा यथेच्छाचारी बननेकी ही शिक्षा मिलती है।

अर्थकी शुद्धि—

१–चोरी-ठगी न करे। व्यापारमें, नौकरी, दलाली, अफसरी, मजदूरी आदि सभीमें सचाई तथा ईमानदारीका सदा ध्यान रक्खे।

२–वस्तुओंमें मिलावट न करे।

३–दूसरेका हक न ले। पराये धनको विषके समान समझे।

४–सत्य-न्यायसे शुद्ध कमाई करे।

५–कमाई अधिक हो तो उसे मौज-शौकमें, विवाह आदिके अवसरोंपर आडम्बरमें, सैर-सपाटेमें तथा व्यर्थकी सजावट-बनावटमें न खर्च करके गरीबोंकी सेवामें लगावे। उसे गरीबोंकी सम्पत्ति समझे।

६–पैसेका लोभ कभी न करे।

७–संग्रहकी अपेक्षा त्यागको अधिक महत्त्व दे।

८–अपने जिम्मेका काम जिम्मेवारी, सचाई, बुद्धिमानीके साथ पूरा समय देकर सम्पादन करे।

९–जिसमें हिंसा होती हो, ऐसी किसी वस्तुका, चमड़ा, खानेकी चीज, मांस-मेद, हड्डी-मज्जा आदिका तथा शराब आदिका व्यापार कभी न करे।

विवाह—

१–लड़की,-लड़के अपने लिये अपने मनसे वर-कन्याका चुनाव न करें। यथासाध्य माता-पिता, अभिभावकों तथा शुभचिन्तक अनुभवी पुरुषोंकी अनुमतिसे करें।

२–विवाहको पवित्र धार्मिक संस्कार माने।

३–असवर्ण विवाह न करे। परधर्ममें विवाह न करे। विजातीय विवाह न करे।

४–शास्त्रविधिसे विवाह किया जाय। रेजिस्ट्रेशन आदिसे नहीं।

५–विवाहमें कम-से-कम खर्च किया जाय। सजावट-आडम्बर आदि न करे, खान-पानमें अधिक व्यय न करे। सादगी बरते।

६–विवाहके बाद तुरंत ही विदेशी प्रथाके अनुसार पति-पत्नी पहाड़ आदिपर आनन्द मनाने (Honey Moon)के लिये न जायँ।

७–विवाह होनेके बाद तलाककी कल्पनाको भी पाप समझे।

पत्नी-पतिके व्यवहार-धर्म—

[पति]

१–पति-पत्नी परस्पर एक-दूसरेको पूरक तथा एक-दूसरेका अर्धाङ्ग समझे। छोटा-बड़ा नहीं।

२–पति अपनेको ईश्वर मानकर पत्नीको दासी या गुलाम कभी न समझे।

३–उसका उचित आदर-सम्मान करे। उससे सच्चे अर्थमें प्रेम करे। उसकी उचित माँगोंको अपने घरकी स्थितिके अनुसार यथाशक्ति सादर पूर्ण करे।

४–पत्नीके साथ कभी रूखा, कटु व्यवहार मन-तन-वाणीसे न करे।

५–पत्नीको कभी न मारे। यह महापाप है।

६–पत्नीको प्रेमभरे शब्दमें सत्‌शिक्षा देता रहे। अपने उत्तम सदाचरण तथा सद्व्यवहारसे उसे संतुष्ट तथा सदाचारपरायण रक्खे।

७–गंदी पुस्तकें न स्वयं पढ़े। पत्नी पढ़ती हो तो उसे समझाकर रोक दे।

८–स्वयं फैशनसे दूर रहकर पत्नीको फैशनमें न जाने दे। मधुरतापूर्वक समझाकर।

९—परस्त्रियोंके पास न जाय। डांस न करे। पत्नीको भी समझाकर उसे परपुरुषोंके साथ डांस न करने दे।

१०—जहाँ अश्लील, असदाचार तथा भ्रष्ट खानपान होता हो—ऐसे स्थानोंमें न स्वयं जाय, न पत्नीको जाने दे, न दोनों साथ जायें।

११—पत्नीके माता-पिता-भाई आदिकी निन्दा न करे।

१२—पत्नी बीमार हो तो उसकी अपने हाथों सब तरहकी सेवा भलीभाँति करे।

[पत्नी]

१—पत्नी पतिको ही परमेश्वर, परम गुरु तथा परम पूजनीय समझकर उसकी तन-मन-धनसे सच्चे हृदयसे हर तरहकी सेवा करे।

२—किसी पर-पुरुषको गुरु न बनाये। किसी पर-पुरुषका स्पर्श न करे।

३—किसी पर-पुरुषसे एकान्तमें न मिले।

४—पतिके साथ सदा नम्रताका, विनयभरा, मधुर वर्ताव करे। कभी रूखे कड़े शब्दोंका प्रयोग न करे। पतिका कभी अपमान न करे।

५—पतिकी उचित सेवाके लिये पहलेसे तैयारी रक्खे, जिससे उनको प्रतीक्षा न करनी पड़े। पतिकी सेवामें अपना सौभाग्य समझे।

६—पतिसे कभी छल-कपटका व्यवहार न करे।

७—घरकी स्थितिसे विरुद्ध पतिसे माँग न करे।

८—पतिके माता-पिता-भाई आदिकी बुराई न करे।

९—पर-पुरुषोंके साथ डांस न करे। मर्यादानाशक स्थानोंमें न जाय।

१०—सिनेमा आदिमें न जाय तथा पतिको भी समझाकर न जाने दे।

११—कृत्रिम उपायोंसे गर्भनिरोध न करे। गर्भपात न करावे।

१२—गंदा साहित्य न पढ़े। गंदे चित्र न देखे।

स्त्रीके लिये पालनीय—

१—स्त्रीका महत्त्व तथा गौरव 'सफल गृहिणी' और 'माता' बननेमें है—क्लर्क, प्रोफेसर, वकील, मैजिस्ट्रेट, मन्त्री आदि बननेमें नहीं।

२—पुरुषोंके क्षेत्रमें जाकर अपने गौरवसे गिरे नहीं। पर्दा नहीं, पर स्त्रियोचित शोभनीय लज्जा अवश्य रक्खे।

३—फैशन स्वीकार न करे। अकेली सैर-सपाटेमें या सहेलियोंके साथ क्लबों, होटलोंमें न जाय।

४—विलायती ढंगके लंबे नख न रक्खे। नखों-होठोंको रँगे नहीं।

५—पर-पुरुषसे हर हालतमें बचे, चाहे गुरुजन ही हो। किसीका स्पर्श न करे।

६—कम कीमतकी शुद्ध सादी पोशाक पहने; साड़ीका व्यवहार करे। साड़ीके नीचे लहँगा अवश्य रक्खे।

७—चमकीली-भड़कीली फैशनकी आकर्षक पोशाक न पहने।

८—चुस्त कपड़े न पहने। सारे अङ्ग ढके रहें, ऐसे कपड़े पहने।

९—सिरपर नकली जूड़ा न रक्खे; न पुरुषोंकी भाँति केश कटवावे।

१०—गहने भी कम-से-कम पहने। गहने ऐसे बनाये जायँ, जो जल्दी-जल्दी टूटें नहीं, जिनमें बनवाईके पैसे कम लगें और समयपर तुरंत बिक सकें तथा घाटा न लगे।

११—घरकी चीजोंकी सँभाल, उनका यथायोग्य व्यवहार, बच्चोंका पालन-पोषण आदि सावधानीसे करे।

सदाचार, गृहस्थधर्म, मानवधर्म आदि—

१—दूसरेकी उन्नतिसे प्रसन्न हो, डाह-ईर्ष्या न करे।

२—किसीकी भूल, पतन या असफलतापर उसको देखकर हँसे नहीं।

३—किसीको भी गिरानेमें सहायक न बने; उठानेमें बने।

४—दूसरेके अधिकारकी रक्षा करे, अपने अधिकारको छोड़ दे। दूसरेके लिये उदार बने, अपने लिये कंजूस बने। दूसरेकी आशाको यथासाध्य पूर्ण करे, स्वयं किसीसे आशा न रक्खे। पर यह सब करके कभी अभिमान न करे।

५—दूसरेके साथ वैसा ही बर्ताव करे, जैसा दूसरोंसे स्वयं चाहता है। दूसरेसे वैसा बर्ताव कभी न करे, जैसा वह दूसरेसे नहीं चाहता।

६—अपनी सुख-सुविधाको दुखियों तथा दीनोंसे ली हुई उधार समझे और सम्मानपूर्वक उसे ब्याजसमेत लौटाता रहे।

७—अपनी उतनी ही सम्पत्तिपर अपना हक समझे, जितनेसे सादगीसे जीवन-निर्वाह हो।

८—सबकी सेवा करके बचा हुआ ही खाय। उसीसे पापनाश होते हैं।

९—प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थितिको, जो फलरूपमें मिली है, भगवान्का मङ्गल-विधान मानकर प्रसन्न हो। उसीमें अपना मङ्गल समझकर अनुकूलताका अनुभव करे—जैसे ऑपरेशनकी पीड़ामें रोगी अनुकूलताका अनुभव करता है। दर्द होनेपर भी सुखी रहता है।

१०—दूसरेके छिद्रोंको प्रकट न करे; ढके।

११—जिससे जहाँतक बने, सदाचारका पालन तथा सदाचारके प्रचारमें सहायता करे। असदाचारका कभी सेवन, समर्थन-सहयोग न करे।

१२—जहाँतक बने, अपना काम अपने हाथसे करे।

१३—जहाँतक बने, अपनी आवश्यकता कम-से-कम रक्खे।

१४—रोगमें, विपत्तिमें, व्यापारमें, भजनमें निराशाकी बात न सोचकर, सदा आशाकी सोचे।

१५—सत्शास्त्रों, अवतारों, ऋषि-मुनियों, संत-महात्माओं, तीर्थों, मन्दिरोंकी पूजा-अर्चनापर श्रद्धा रक्खे।

१६—सभी युगोंके तथा सभी धर्मोंके संतोंका आदर करे; उनके जीवनकी उच्च शिक्षाओंसे लाभ उठावे।

१७—मेरे प्रारब्धके बिना मेरा बुरा या भला कोई कर नहीं सकता, इसलिये कोई बुरा करता दीखे या अपने बुरेमें किसीका हाथ दीखे तो यह समझे कि मेरा बुरा तो मेरे अपने कर्मफलके रूपमें ही हुआ है, बुरा चाहने-करनेवाला तो निमित्त है; पर उसने नया बुरा कर्म करके अपना बुरा कर लिया है, यह समझकर उसको क्षमा करनेके लिये भगवान्से प्रार्थना करे, द्वेष न करे। उसका बुरा न चाहे।

१८—भला होनेमें जो व्यक्ति निमित्त बना है, उसने अवश्य मेरी भलाई चाही है। इसलिये उसका उपकार माने।

१९—वस्तुओंका संग्रह कम-से-कम करे। वितरण करे।

२०—आरामतलब, आलसी, परमुखापेक्षी न बने। परिश्रमी, कर्मशील, स्वाश्रयी बने।

२१—किसी प्रकारका नशा तो करे ही नहीं; गाँजा, चरस, भाँग आदिका सेवन न करे। बीड़ी, सिगरेट, तमाखू भी न खाये-पीये। चाय भी यथासाध्य न पीये। सोडा, लेमनेड, कोकाकोला आदिसे भी बचे।

२२—आर्यजातिके चिह्न शिखा (चोटी) को अवश्य रक्खे।

२३—दुःख-संकट—विपत्तिमें धैर्य-धर्मका त्याग न करके उसे भगवान्का मङ्गल-विधान मानकर ग्रहण करे और विश्वासपूर्वक भगवत्प्रार्थना करता रहे।

२४—बच्चोंको श्रमशील, सदाचारी, ईश्वरभक्त, दयालु, कर्मपरायण, उत्साही, कर्मतत्पर, विनयी, मधुर-भाषी, त्याग-प्रेमी, सादा—पवित्र-जीवनवाले, पुरुषार्थी, मेधावी, आत्मनिर्भर, सच्चे, ईमानदार बनानेके लिये शुरूसे ही माता-पिता स्वयं वैसे आचरण करें तथा शिक्षा, उपदेश, क्रिया और आचरणके द्वारा उनका ऐसा ही जीवन-निर्माण करें। उन्हें प्रमादी, आलसी, क्रोधी, अभिमानी, व्यर्थ खर्च करनेवाले, पर-निर्भर, मिथ्यावादी, असदाचारी, भोगपरायण, चटोरे, कर्म-विमुख, उद्दण्ड, कटुभाषी और मूर्ख न बनावें।

२५—होटलों, क्लबों, नृत्यगृहों, सिनेमामें और जहाँ उच्छृङ्खल रूपसे खान-पान, आमोद-प्रमोदके नामपर अनाचार होता हो, वहाँ न जाय। न बच्चोंको ले जाय।

२६—गरीबोंकी सुख-सुविधाका सदा ध्यान रक्खे। सभीको रहनेके लिये स्थान, अन्न, वस्त्र, चिकित्सा, शिक्षा आदि समुचित रूपसे सुलभतासे मिले, इसका प्रयत्न करे।

२७—जहाँ दुर्भिक्ष, बाढ़, महामारी, भूकम्प, वज्रपात, अग्निदाह, दंगे-फसाद आदि दैवी प्रकोपोंसे पीड़ित प्राणी एवं जहाँ प्रारब्धवश अर्थ, वस्त्र तथा आश्रयहीन हमारेही-जैसे मानव तथा इतर प्राणी, विधवा बहिनें, दीन असहाय विद्यार्थी, अनाथ बालक, रोगपीड़ित तथा विपत्तिमें फँसे नर-नारी विभिन्न प्रकारसे अभावग्रस्त हों, वहाँ मानो उन अभावग्रस्तोंके रूपमें भगवान् ही हमारे सामने उपस्थित हैं—यों समझकर उनके अभावकी पूर्तिके लिये जिसके पास जो कुछ हो, उसको उन्हींकी वस्तु मानकर अभिमानशून्य विनम्रभावसे इसे अपना ही परम तथा चरम स्वार्थ समझकर निष्काम पूजाके भावसे उनकी सेवामें सम्मानपूर्वक समर्पण कर दे।

२८—कुटुम्बके असमर्थ जनोंका यथाशक्ति आदर-पूर्वक भरण-पोषण करे।

२९—माता-पिताकी सब प्रकारसे सेवा करे। इसमें अपना सौभाग्य समझे। बीमारीकी अवस्थामें नौकरों-दाइयोंपर ही न छोड़कर यथासाध्य अपने हाथोंसे उनकी सेवा करे।

३०—घरमें सब प्रकारसे सादगी रक्खे, ज्यादा फरनीचर न रक्खे, सजावट—डेकोरेशन आदि न करे-करावे। अपनेको आरामकी चीजोंसे बचाये रक्खे।

३१—गौका पालन, संरक्षण तथा संवर्धन हो, इसके लिये यथासाध्य तन-मन-धनसे यत्न करे।

३२—प्राणिमात्रकी हिंसासे बचे। ऐसे किसी व्यक्तिका अथवा कसाईखानेका, प्रयोगशाला आदिका न समर्थन करे, न सहयोग करे, जहाँ प्राणि-हिंसा होती हो।

३३—विधवा बहिनका कभी अपमान न करे, उसका संन्यासीकी भाँति आदर करे, उसके शील तथा धनका संरक्षण करे। उसको दुखी न होने दे।

३४—राष्ट्र, देश या धर्म आदिकी भक्ति तथा सेवाका अर्थ है—राष्ट्र, देश या धर्मके साथ सर्वथा तादात्म्य हो जाना। व्यक्तिका अलग स्वार्थ रहे ही नहीं। वह जिसकी सेवा-भक्ति करना चाहता हो, स्वयं उसीमें समा जाय।

दूसरोंकी किस चीजसे बचे—

१—दूसरोंके पहने हुए कपड़े, धोती आदि न पहने।

२—दूसरोंके अंगोछेसे शरीर न पोंछे।

३—दूसरोंके बिछौनेपर न सोये।

४—दूसरोंके आसनपर बैठकर जप-स्वाध्यायादि न करे।

५—दूसरोंकी मालासे जप न करे।

६—दूसरोंकी जूठी थाली आदिमें न खाय। किसीकी भी जूठन न खाय।

७—दूसरोंके दोषोंकी ओर दृष्टिपात न करे। दृष्टि पड़ जाय तो न किसीसे कहे, न चिन्तन करे।

८—दूसरोंके हकका एक पैसा भी कभी न ले, न लेनेकी इच्छा ही करे।

९—दूसरोंके सुख और मान-प्रतिष्ठाको छीननेका कभी मन या प्रयत्न न करे।

मृतक-कर्म—

१—मृतक प्राणीका अन्त्येष्टि-संस्कार विधिवत् करे।

२—उसके लिये शास्त्रोक्त पिण्डदान, तर्पण, श्राद्धादि

अवश्य करे। उसके निमित्त अन्न, वस्त्र, जल, भूमि, जूता, छाता आदि दान करे।

३–सम्भव हो तो गोदान करे।

४–जिनके यहाँ तर्पण-श्राद्धादि कर्म नहीं होते, वे कम-से-कम अन्न, वस्त्र, जल, जूता, छाता अवश्य दान करें।

५–मृतक प्राणीकी सद्गतिके लिये भगवत्प्रार्थना, भगवन्नामकीर्तन, गीता-पाठ, गायत्रीजप करे-करावे।

६–हो सके तो मूल श्रीमद्भागवत-सप्ताह-पारायण तथा विष्णुसहस्रनामके पाठ करे-करावे।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

पागलकी झोली

[नरमुण्ड]

(लेखक—महात्मा श्रीसीताराम ओंकारनाथजी)

पागलने एक दिन देखा, गङ्गातीरपर एक नरमुण्ड लुढ़कता चला जा रहा है। वह जैसे ही उसके पास पहुँचा, तत्क्षण ही नरमुण्ड अपनी शुभ्र दन्तपङ्क्ति खोलकर हँसने लगा। पागलने पूछा—'अरे मृतकके मस्तक! तुम क्यों हँस रहे हो?'

मुण्ड कुछ क्षण हँसकर बोला—'अरे जीवित मनुष्य! तुम क्यों हँसा करते हो?'

पागल–हमलोग तो हँसते हैं आनन्द होनेसे, किंतु तुम किसलिये हँस रहे हो?

मुण्ड–मैं हँस पड़ा कुटीरमें तुम्हारा अनुराग देखकर।

पागल–अनुराग क्या पड़ा है! जबतक शरीर है, उस समयतक रहनेके लिये एक जगह तो चाहिये।

मुण्ड–कितने समयतक तुम्हारा शरीर रहेगा बन्धु?

पागल–यह तो नहीं जानता।

मुण्ड–तब तुमको कुटियाकी क्या आवश्यकता है? तुम इसी गङ्गातीरपर बैठकर राम-राम करो। अब और मुहर न लगाओ बन्धु! जब त्यागका मार्ग अपना लिया है, तब और ममताकी मुहर न मारो। जिस वस्तुपर अपनी ममताकी मुहर लगाओगे, निश्चय जानो बन्धु! उसके लिये अतीव यन्त्रणा सहन करनी होगी। कोई कुछ नहीं है बन्धु! सब धोखा है। मेरी ओर एक बार गौरसे देखो—मेरे क्या नहीं था। अतुल ऐश्वर्य था, सुन्दर नीरोग शरीर, पतिप्राणा पत्नी, पितृभक्त पुत्र—जगत्में सुखके जो कुछ भी उपादान हैं, सभी थे। एक दिन मेरे आदेशसे सैकड़ों-सैकड़ों मनुष्य उठते-बैठते थे। मेरी एक आज्ञाका पालन कर पानेसे कितने लोग कृतार्थ हो उठते थे। एक दिन मेरे प्रतापसे देशवासी काँपते रहते थे। मेरा नाम सुनकर दस्युदल भाग खड़ा होता था। मेरे राज्य, सम्पत्ति, ऐश्वर्यने मुझे भुला रक्खा था। मैं उत्तम-उत्तम द्रव्योंका भोग करता था। पलंगके ऊपर दुग्धफेन-धवल शय्यापर शयन करता था, इन्द्रियविलासके सिवा संसारमें और कुछ भी है, यह मैं नहीं जानता था। मेरा शरीर चला जायगा, यह बात एक क्षणके लिये भी मनमें उदित नहीं होती थी। यही सोचता था, अनन्तकालतक इस सुखको भोगता रहूँगा; किंतु क्या यह भी कभी हुआ है? शरीरको रोगने पकड़ लिया, पत्नी-पुत्र चल बसे। उसके बाद मेरा भी शरीर छूट गया! वह सारा-का-सारा घर-द्वार, ऐश्वर्य जहाँका तहाँ धरा रह गया। आज मैं इस गङ्गातटपर कितने समयसे पड़ा हुआ हूँ। मेरा मांस आदि कुत्ते-सियारोंने खा डाला। उसके दूसरे दिन मेरा मांस आदि सब उनकी विष्ठाके रूपमें परिणत हो गया। मैं अपने शरीरसे विच्युत होकर कितने दिनोंसे इसी जगह पड़ा हुआ हूँ। कितनी धूप-वर्षा, कितने जलप्लावन, कितने झड़-तूफान और वज्रपात मेरे ऊपरसे होकर गुजर चुके हैं। मैं स्थिर होकर इस स्थानपर पड़ा-पड़ा मेरी पुरानी बातोंको याद करता और हँसता रहता हूँ तथा मेरे पाससे होकर जो गुजरते हैं, उनको कहता हूँ—'अरे! तुमलोगोंकी दशा भी एक दिन मेरी तरह होगी। अबसे उसे (भगवान्‌को) पुकारना आरम्भ कर दो।' मेरी बात कोई सुन नहीं पाता, कोई सुनकर भी इधर देखता नहीं। कोई-कोई देखकर कहता है—'ओह! एक मृतकका मस्तक इस जगह पड़ा है।'

मैं उनको कहता हूँ—'अरे मतवाले मनुष्य ! एक दिन यह मृतकका मुण्ड भी तुमलोगोंके समान जीवित मनुष्यका था। यह सदासे मृतकका मुण्ड नहीं है।' कौन किसकी सुनता है। अपने-अपने भावमें सब बहे चले जाते हैं। मेरी बात सुन न पानेपर भी मुझे देखकर धीरेसे रुक जाते हैं। मुझे देखकर संसारकी असारताका एक क्षणके लिये चिन्तन करते हैं और इस स्थानसे चले जाते हैं। उसके पश्चात् तरंगके ऊपर तरंगके समान विषयचिन्ता उनके क्षणिक वैराग्यको बहा देती है। किंतु मैं एक ही तरह चिल्ला-चिल्लाकर बोलता रहता हूँ—सब धोखा है, सब धोखा है! पर कौन मेरी बात सुनता है ?

पागल—अच्छा बन्धु ! तुम जो यहाँ पड़े हुए हो, इसमें क्या कोई उद्देश्य नहीं है ?

मुण्ड—उद्देश्य निश्चय ही है। अकारण तो एक तिनके-तकका अस्तित्व नहीं हो सकता।

पागल—तुम यहाँ पड़े-पड़े जगत्का कौन-सा काम कर रहे हो ?

मुण्ड—भगवान्ने बहुत बड़ा काम मेरे जिम्मे कर रक्खा है। मैं लोगोंको वैराग्यदान करनेके लिये यहाँ पड़ा हूँ।

पागल—अभी तो तुमने कहा कि तुम्हारी बात कोई सुन नहीं पाता।

मुण्ड—अनेक लोगोंके न सुन पानेपर भी तुम्हारे-जैसे दो-चार बन्धु तो आकर बातचीत कर ही जाते हैं।

पागल—अच्छा बन्धु ! तुम क्या यह कहना चाहते हो कि वैराग्यके बिना साधना नहीं हो सकती। एकमात्र अभ्यासके द्वारा ही सब कार्य सिद्ध हो सकते हैं।

मुण्ड—नहीं, वैसा नहीं होता। अभ्यास-वैराग्य दोनों ही आवश्यक हैं। गीतामें भगवान्ने कहा है—

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।

फिर सांख्यदर्शनमें भी कहा है—'अभ्यासाद् वैराग्याच्च।' यदि वैराग्य न हो, तो कोई अभ्यास तो टिकाकर रख नहीं सकता। साधन कभी स्थायी नहीं होता। कौपीनके लिये मेरा ऐसा हाल हो गया। इस तरह त्यागके पथपर जाकर भी मनुष्य भोगी हो जाता है।

पागल—तब क्या उपाय है ? किस प्रकार साधक हुआ जा सकता है ?

मुण्ड—वही यथार्थ साधक है, जो मृत्युको सम्मुख रखकर साधना करता है। श्वास-श्वासमें मृत्युका चिन्तन किये बिना मनुष्य साधनाके पथपर अग्रसर नहीं हो सकता। यही सोचो, तुम्हारी साधनामें क्या-क्या विघ्न हैं ? यह स्थूल शरीर और शरीरसम्बन्धी जो सब वस्तुएँ हैं, यदि देहपर आस्था न रहे, सर्वदा स्मरण रहे कि यह मांसपिण्ड नश्वर है—तो फिर साधनामें कौन विघ्न करेगा ? स्थूल देह ही तो सारे गोलमालकी जड़ है। जानते हो क्या बन्धु ! इस देहको भूलकर भी भूला नहीं जा सकता। भगवान्का नाम लेते-लेते एक भाव आया, देहकी विस्मृति हो गयी। फिर कुछ समय बाद भावभङ्ग होनेपर देह फिर आ गया। रूप-रसकी आकाङ्क्षा मनमें जाग उठी—इसी समय उसको वैराग्यका उपदेश देनेकी आवश्यकता होती है। तभी वह अपने अभ्यासका आश्रय लेकर राम-राम जपता रहेगा। फिर श्रीभगवान्के सरस स्पर्शलाभ होनेपर अपनेको खो बैठेगा।

दो बातनको भूल मत जो चाहै कल्यान।
नारायण एक मौत को, दूजे श्रीभगवान॥

पागल—अच्छा बन्धु ! भगवान्का स्पर्श तो प्राप्त होता है; किंतु उस स्पर्शसुखमें ही सदाके लिये डूबे रहना क्यों नहीं बनता ? इसका कारण बतला सकते हो ?

मुण्ड—जो चेष्टा करता है, वही डूबा रह सकता है।

पागल—चेष्टा किस प्रकार हो ?

मुण्ड—स्पर्शलाभका कारण खोजनेपर पता लगता है कि जप ही भगवान्के स्पर्शलाभका मुख्य कारण है। जो जितना जप करता है, वह उतने समयतक उसमें डूबा रह सकता है। स्पर्शलाभका कारण ही जप है। जप बढ़ाओ—तुम्हें अधिक समयतक स्पर्श प्राप्त होगा। जपको छोड़ो मत—तुम श्रीभगवान्में ही डूबे रहोगे।

पागल—ऐसा देखा जाता है, जप किया, किंतु मनको स्पर्श मिला नहीं।

मुण्ड—उस समय चीत्कार करके पुकारनेके लिये संतजन कहते हैं। भगवान् तब दूर चले गये होते हैं—तब पुकारते-पुकारते पास आ जाते हैं। जप ही इस युगमें एकमात्र उपाय है। जप करते-करते भगवान्में डूब जाओ। निर्गुण-सगुण जिस रूपमें उन्हें चाहो, राम-राम जप करनेसे उनको उसी रूपमें पा जाओगे। जपरूप नींवके ऊपर ब्रह्मज्ञानरूप

प्रासाद खड़ा है। यदि नींवको दृढ़तर न करके ज्ञानका प्रासाद उठानेकी चेष्टा करोगे तो तुम देखोगे कि तुम मौखिकरूपसे ही ब्रह्मज्ञानी हो पाये हो। जप चलाओ। दिनके बाद दिन, रातके बाद रात—नामजप करते-करते व्यतीत हो। आसन स्थिर हो जाय—'आसनजयात्प्राणजयः।' आसन-जय होनेसे प्राण-जय होगा।

उसके बाद देखोगे, भगवान् स्वयं आकर तुमको दर्शन देंगे। भगवान्से बड़ा उनका नाम है। नाम जपो—निर्गुण-सगुण जिस रूपमें उनको चाहोगे, उसी रूपमें उनको प्राप्त करोगे।

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा।
अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरें मत बड़ नामु दुहू तें।
किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥

पागल—अच्छा बन्धु! अन्यमनस्कतासे पुकारनेपर भी क्या वे कृपा करते हैं? मान लो, मैं उनको मन-प्राणसे पुकारना चाहता हूँ; पुकारता हूँ, किंतु मन सरक जाता है, यह मिथ्याचार तो नहीं है?

मुण्ड—नहीं, मिथ्याचार नहीं है। लोगोंको ठगनेके लिये साधुवेष बनाकर साधनाका ढोंग करनेका नाम मिथ्याचार है। मनपर विजय पानेकी चेष्टा मिथ्याचार नहीं हो सकती। लय-विक्षेपपर विजय प्राप्त करनेके लिये ही साधना होती है। साधक अवस्थामें मनकी चञ्चलता तो रहेगी ही। मनके एक भावमें स्थित रहनेका नाम है—सिद्धावस्था। और कृपाकी बात करते हो? निश्चय ही वे कृपा करते हैं। मेरा नाम गोविन्द है। तुम अन्यमनस्क भावसे 'गोविन्द' 'गोविन्द' कहकर पुकारते हो, तो पुकार सुनकर क्या मैं उत्तर नहीं दूँगा और क्या मैं तुम्हारे पास नहीं जाऊँगा? तुम्हारे पास जानेपर भी यदि मैं देखूँगा कि तुम्हारा मन कहीं और है, तो वैसा होनेपर भी मैं कहूँगा—'अरे बन्धु! मैं आ गया हूँ।' इसी प्रकार अन्यमनस्कतासे पुकारनेपर भी वे हँसते-हँसते आकर कहते हैं—'अरे, मैं आ गया हूँ।' यह बात तो जानते हो?

पागल—खूब जानता हूँ।

मुण्ड—भाई रे, रत्नाकर 'मरा,' 'मरा' जप करता था, अजामिलने पुत्रको 'नारायण' कहकर पुकारा था, इसीसे वे कृतार्थ हो गये, तब अन्यमनस्कतासे पुकारनेपर वे क्यों नहीं प्राप्त होंगे?

प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत्।
तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं हरिनाम दहेदघम्॥
(ब्रह्मपुराण)

शास्त्रमें महापातकीको भी खूब आश्वासन दिया गया है। क्या समझे बन्धु! नाम अभिमन्त्रित सरसों है। सर्प कहीं भी क्यों न हो, अभिमन्त्रित सरसोंके दाने जैसे उसे खींच लाते हैं, उसी प्रकार मन कहीं भी क्यों न हो—नाम उसको खींच ही लायेगा। कोई कितना भी आसक्त क्यों न हो, पापी हो, तो भी उसके लिये भय नहीं है। वह यदि भगवान्का आश्रय लेकर कातरभावसे कहता है—'भगवन्! मैं बड़ा भारी पापी हूँ, बड़ा आश्रयहीन हूँ, मुझपर तुम अपने निज गुणके कारण कृपा करो।' ऐसा करनेपर वे उसको उठाकर अपनी छातीसे चिपका लेते हैं। भाई रे! उनका नाम पतितपावन है—अधमतारण है। महापातकी भी उनकी कृपासे वञ्चित नहीं होते।

पागल—बन्धु! तुम्हारी बातें बड़ी मीठी लग रही हैं। तुम्हारी इस उत्साहपूर्ण वाणीसे निराशके हृदयमें भी आशाका संचार हो जाता है। तुम्हारा संग पाकर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है। तुम्हारे साथ दिन-रात बातचीत करते रहनेकी इच्छा होती है।

मुण्ड—महापुरुष कहते हैं, बातचीत भी बड़ी साधना है। भगवद्विषयक वार्ता करनेसे चिन्ताओंके उन्मादको दूर किया जा सकता है। वार्तालाप भी होता है एवं भवसागर-के पार उतरनेका उपाय भी होता है।

पागल—बन्धु! तुम्हारे पास ही रहूँगा। तुम्हारे साथ ही बातचीत करूँगा।

मुण्ड—अच्छी बात है। देखो बन्धु! मनुष्य किसी प्रकार भी सुखी नहीं हो सकता, जबतक उसे सर्वत्र स्मरण-का अभ्यास नहीं हो जाता।

पागल—अच्छा बन्धु! क्या सभी लोग ईश्वरमें विश्वास करते हैं? क्या सभी जातिके लोग ईश्वरको पुकारते हैं?

मुण्ड—हाँ, परंतु नामभेद है। जैसे देखा जाता है कि वेदान्ती ईश्वरको 'ब्रह्म' कहते हैं, योगी 'परमात्मा' कहते हैं, भक्त 'भगवान्' कहते हैं। शैवगण 'शिव', शाक्तगण 'शक्ति', गाणपत्य 'गणेश', सौरगण 'सूर्य', वैष्णवजन 'विष्णु' कहते हैं। सांख्यमें कहा जाता है 'आदि विद्वान् सिद्ध कपिल', पातञ्जलमतमें 'क्लेशादिसम्पर्करहित' और श्रुति-

सम्प्रदायके उपदेशक 'अनुग्रहकारी पुरुषविशेष', महापाशुपत मतमें 'लौकिक वैदिक विरुद्धधर्मयुक्त होकर भी निर्लिप्त जगत्कर्ता' और पौराणिकमतमें 'पितामह', याज्ञिक कहते हैं 'यज्ञपुरुष', दिगम्बरमतमें 'निरावरण अर्थात् अज्ञान अदृष्ट देहादिरहित' मीमांसकमतमें उपास्यरूपमें कल्पित 'मन्त्रादि', नैयायिकमतमें 'प्रमाणद्वारा जहाँतक सम्भव हो—धर्मयुक्त' एवं चार्वाकमतमें लोकव्यवहारसिद्ध 'राजा' आदि । यह तो हुई आर्यजातिकी मान्यता । इसके अतिरिक्त अनार्य जातियोंका हिसाब सुनो—ईसाइयोंका 'God', मुसल्मानका 'अल्लाह', पारसियोंका 'जिहोवा', ग्रीकका 'जुपिटर', नीग्रोका 'अङ्कुलङ्कुलु', बेकवा और वासुटौ आदिका 'नियामी' या 'नियाम्बी', न्यूहेब्रेडीज़-द्वीपवासीका 'सुकी', टोरी द्वीपवासी और उत्तर अमेरिकाके रेड इण्डियनोंका 'मनितु', पॉलेशियनका 'आतुआ' अर्थात् 'आत्मा', वास्कोद्वीपीका 'कात्', सोलोमानद्वीपका 'डेंगी', गिल्बर्टद्वीपका 'बाबुजारिक', बातायियोंका 'एहमी', हूवाहीनोंका 'ताने', बाल्वेलवालोंका 'ताओ', मानरो-वासियोंका 'तु', टाहारी लोगोंका 'ओरो', न्यूजीलैण्डका 'राँगी', इत्यादि । सुन लिया, एक व्यक्तिको कितने लोग कितने नामोंसे पुकारते हैं । किंतु सभी 'एक'को ही पुकारते हैं । एकके सिवा 'दो' हैं नहीं बन्धु ! 'एकमेवाद्वितीयम् ।'

'एक' ही प्रवाहित है विशाल विश्वरूपमें,
विशाल विश्व होगा फिर लय उसी 'एक'में ।
अथवा विश्व कभी हुआ ही प्रवाहित नहीं,
निर्विकार चिन्मय वह है तत्त्व 'एक' ही ॥

पागल—बन्धु ! बन्धु ! चुप मत होओ । और कुछ बोलो ।

मुण्ड—

डूब जा रे पागल तू मुझमें ही सर्वथा
मैं ही एक हूँ यहाँ दूसरा कुछ नहीं ।
इतना कह मुर्देका मस्तक चुप हो गया
कहता अब कोई भी बात वह है नहीं ॥

पागल—सत्य ही है तुम्हारी कीर्ति । बोलते रहो । जब पागल बनाया है, तो अच्छी तरहसे—पूरा ही बना दो । बताओ, अब दिन कैसे बिताऊँ ?

मुण्ड—

आत्माम्भोधेस्तरङ्गोऽस्म्यहमिति गमने भावयेत्यासनस्थः
संवित्सूत्रानुविद्धो मणिरहमिति वा चेन्द्रियार्थप्रतीतौ ।
दृष्टोऽस्म्यात्मावलोकादिति शयनविधौ मग्न आनन्दसिन्धा-
वन्तर्निष्ठो मुमुक्षुः स खलु तनुभृतां यो नयत्येवमायुः ॥

जो चलते समय अथवा आसनपर बैठा हुआ यह भावना करता है कि मैं परमात्मारूपी समुद्रकी तरङ्ग हूँ, इन्द्रियोंके द्वारा विषयका ग्रहण होनेपर यह सोचता है कि मैं चैतन्यरूपी सूत्रमें पिरोया हुआ मनियाँ हूँ तथा सोते समय मैं परमात्मदर्शनसे दृष्ट हूँ—यह सोचता हुआ आनन्दके समुद्रमें डूब जाता है—शरीरधारियोंमें जो इस प्रकार अपनी आयुको व्यतीत करता है, वही अन्तर्निष्ठ—अपने अन्तरात्मामें प्रतिष्ठित मुमुक्षु (मोक्षार्थी) है ।

पागल—बड़ा मधुर है, मधुर है । राम-राम सीताराम ।

प्रेमरूप पवित्र फल

भोगासक्ति-कामना करती रहती जहाँ चित्त चञ्चल ।
'प्रेम' नामपर बहती धारा विषय-वासनाकी प्रतिपल ॥
वहाँ प्रेमका शान्त सुशीतल बहता नहीं स्रोत निर्मल ।
घोर नरक-फल फलता, होता कलुष-कलङ्क-लाभ केवल ॥
सर्वत्यागकी विमल भूमिमें फलता प्रेमरूप शुचि फल ।
मिटता सभी एषणा-तम जब भावद्युति दिपती उज्ज्वल ॥
प्रेमराज्यका पावन वह अति मधुर भावमय रङ्गस्थल ।
करते वहाँ रास नित रसमय राधामाधव दिव्य-युगल ॥

गांधी-शताब्दीके मङ्गलप्रसङ्गमें गांधीजीकी दिव्य वाणी

मेरे राम

राम तो मेरे हृदयमें राज्य कर रहे हैं । मेरे न माँ है, न बाप और न भाई । मैं छत्रहीन हूँ । राम ही मेरे सर्वस्व हैं । वही माँ है, बाप है, भाई है, सर्वस्व है । मैं उसीका जिलाया जीता हूँ । सारी स्त्री-जातिमें मुझे वही दिखायी देता है । इस कारण मैं समस्त स्त्रियोंको माँ या बहिनके समान मानता हूँ । मैं सभी पुरुषोंमें उसीको देखता हूँ । इसलिये सबको अवस्थाके अनुसार बाप, भाई या पुत्रकी तरह मानता हूँ । मैं उसी रामको भंगी और ब्राह्मणमें देखता हूँ । इसलिये दोनोंकी वन्दना करता हूँ ।

—नीति-धर्म-दर्शन, पृ० ८८९

राम-नाम

(रामधुनकी शक्ति)

मैं बिना किसी हिचकिचाहट यह कह सकता हूँ कि लाखों आदमियोंद्वारा सच्चे हृदय और एक ताल, एक लयसे गायी जानेवाली रामधुनकी शक्ति सैनिक शक्तिके दिखावेसे बिल्कुल अलग और कईगुना श्रेष्ठ होती है ।

—नीति-धर्म-दर्शन, पृ० ७१८

(राम-नाम हर समय चलता रहे)

वास्तवमें राम-नाम जाने-अनजाने हमेशा ही होना चाहिये, जैसे संगीतमें तम्बूरा । पर हाथ जो काम करते हों, उसमें हम एकध्यान न हो सकें तो भी राम-नामका इच्छापूर्वक रटन होना चाहिये ।

—नीति-धर्म-दर्शन, पृ० ६५४

(राम-नामकी महिमा)

राम-नाम सिर्फ थोड़े-से विशिष्ट व्यक्तियोंके लिये नहीं है । वह सबके लिये है । जो उसका नाम लेता है, वह अपने लिये एक बड़ा खजाना जमा करता है । यह ऐसा खजाना है जो कभी नहीं चुकता । इसमेंसे जितना निकालें, उतना ही बढ़ता जाता है । इसका अन्त नहीं है । जैसा कि उपनिषद् कहता है, 'पूर्णमेंसे पूर्ण निकालें तो पूर्ण ही शेष रह जाता है ।' वैसे ही राम-नाम समस्त रोगोंका शर्तिया इलाज है, फिर चाहे वे शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक हों । राम-नाम ईश्वरके कई नामोंमेंसे एक है । सच बात यह है कि दुनियामें जितने इन्सान हैं, उतने ही ईश्वरके नाम हैं । आप रामके स्थानपर कृष्ण कहें या ईश्वरके अगणित नामोंमेंसे कोई और नाम लें, इससे कोई फर्क न पड़ेगा ।

—नीति-धर्म-दर्शन, पृ० ३०३-३०४

(नामाधार)

अगर लाख प्रयत्न करनेपर भी मनुष्यका मन अपवित्र रहे, तो रामनाम ही उसका एकमात्र आधार होना चाहिये ।

—नीति-धर्म-दर्शन, पृ० २९८

(राम-नाम)

मुझे राम-नामके सिवा पवित्रता पानेका कोई और तरीका मालूम नहीं । संसारमें हर जगह प्राचीन ऋषि भी इसी रास्तेपर चले हैं । वे खुदाके बन्दे थे, कोई वहमी या ढोंगी आदमी नहीं । मैं यह नहीं कहता कि राम-नाम मेरी ही शोध है । जहाँतक मैं जानता हूँ, राम-नाम ईसाईधर्मसे भी पुराना है ।

—नीति-धर्म-दर्शन, पृ० ३०३

(इलाजोंका इलाज)

आध्यात्मिक रोगों (आधियों) को मिटानेके लिये राम-नामके जपका इलाज बहुत पुराने जमानेसे हमारे यहाँ प्रचलित रहा है । लेकिन चूँकि बड़ी चीजमें छोटी चीज भी समा जाती है, इसलिये मेरा यह दावा है कि हमारे शरीरकी बीमारियोंको दूर करनेके लिये भी राम-नामका जप सब इलाजोंका इलाज है ।

—नीति-धर्म-दर्शन, पृ० ३००

(रामनाम राम-बाण है)

राम-नाम रामबाण है, यह अटल विश्वास तू रखती है । सर्वत्र अन्धकार दिखायी देता हो तो राम-नामका रटन करती ही रहना । इससे भला ही होगा ।

—नीति-धर्म-दर्शन, पृ० २९१

(रामनाम रामबाण ओषधि है)

आपके लिये, मेरे लिये और जो समझें उन सबके लिये राम-नाम रामबाण ओषधि है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं । राम-नाम निर्दोष और नीरोगके लिये नहीं, हमारे-जैसे पातकी और रोग-ग्रस्त लोगोंके लिये है । इसलिये कोई फल मिले या न मिले, तब भी दृढ़ताके साथ राम-नामकी रटन तो लगी ही रहनी चाहिये ।

—नीति-धर्म-दर्शन, पृ० १८९-१९०

धर्म

(धर्म-पालन)

सभी लोग मेरा त्याग कर दें, फिर भी मुझे धर्मका पालन अवश्य करना है। शास्त्र कहता है कि धर्म-पालनके लिये अन्य किसीके संग-साथकी जरूरत नहीं, केवल ईश्वरके साथकी जरूरत है।......धर्मरूपी रत्नका करोड़ों आदमी उपयोग कर सकते हैं। जितना ही अधिक उसका उपयोग किया जायगा, उतना ही उसका जौहर चमकेगा।

—नीति-धर्म-दर्शन, पृ० ६७८

(मेरा प्रेरणा-स्रोत धर्म)

मेरा जीवन धर्मके सहारे चल रहा है। मैं कह चुका हूँ कि मेरी राजनीतिका उद्गम-स्थल भी धर्म ही है। मेरी राजनीति और धर्मनीतिमें कोई अन्तर नहीं। जहाँ मुझे राजनीतिमें माथापची करनी पड़ी, वहाँ भी मैंने अपने जीवनाधार धर्म-तत्त्वकी उपेक्षा नहीं की।

—नीति-धर्म-दर्शन, पृ० ६७७

(धर्म-राज्यकी स्थापना)

हर एकको यह अनुभव करना चाहिये कि पश्चिमकी नकल करके हम भारतमें धर्मराज्यकी स्थापना नहीं कर सकते। पश्चिममें आचरित आत्मनियन्त्रण सामयिक आवश्यकता या नीतिपर आधारित है। पूर्वमें आत्मनियन्त्रण स्वयंमें एक उद्देश्य है। धर्मकी शिक्षा यह नहीं है कि कोई सत्य इसलिये बोले कि यह लाभदायक है। प्रत्येक धर्ममें अपने विश्वासकी घोषणा है कि 'सत्य स्वयं ईश्वर है।'

—नीति-धर्म-दर्शन, पृ० ६१६

(धर्म एवं राजनीति)

मेरा सुझाव राजनीतिक नहीं, धार्मिक है और मैं राजनीतिमें इसलिये भाग लेता हूँ; क्योंकि मैं अनुभव करता हूँ कि जीवनका कोई विभाग ऐसा नहीं है, जिसका धर्मसे सम्बन्ध-विच्छेद किया जा सके।

—नीति-धर्म-दर्शन, पृ० ६११

(धर्ममय जीवन)

मेरा सारा जीवन धार्मिक भावनासे ओत-प्रोत रहा है। मैं बिना धर्मके एक पल भी जीवित नहीं रह सकता था। मेरे बहुत-से राजनीतिक मित्रोंको मेरी ओरसे निराशा हो गयी है; क्योंकि उनका कहना है कि मेरी राजनीतिमें भी धर्मकी बू आ जाती है। उनका कथन सही है। हाँ, मेरी राजनीति और मेरी समस्त प्रवृत्तियाँ धर्मसे ही निकली हैं। मैं तो यह भी कहूँगा कि धार्मिक मनुष्यका प्रत्येक कार्य धर्मका ही परिणाम होना चाहिये; क्योंकि धर्मका अर्थ है—ईश्वरीय बन्धन। इसका अर्थ यह कि मनुष्यकी प्रत्येक साँसपर ईश्वरका ही शासन चल रहा है। अगर आप इस सत्यका साक्षात्कार कर लें तो आप देखेंगे कि ईश्वर ही आपके प्रत्येक कार्यका नियामक और संचालक है।

—नीति-धर्म-दर्शन, पृ० २९०

गीतापर निष्ठा

(कामधेनु गीता)

मैं गीता-माताके संदेशको हृदयमें धारण करूँगा। वह विलक्षण माता है। मेरा खयाल है, तुम जानती हो कि वह माता कहलाती है। गीताका अर्थ है—गेय। वह शब्द विशेषणके रूपमें उपनिषद्के साथ प्रयुक्त होता है, जो स्त्रीलिङ्ग है। गीता कामधेनुकी भाँति है, जो सम्पूर्ण इच्छाओंकी पूर्ति करती है। इसलिये वह माता कहलाती है। अपने आध्यात्मिक जीवनको कायम रखनेके लिये हमें जितने दूधकी आवश्यकता है, उसके लिये अगर हम याचक दुधमुँहे बच्चेकी तरह माँग करें तो वह अमर माता हमें सम्पूर्ण दूध दे देती है। उसमें अपने लाखों बच्चोंको अपने अजस्र थनोंसे दूध देनेकी क्षमता है।

—नीति-धर्म-दर्शन, पृ० ५२१

(हिंदू-धर्मग्रन्थोंका प्रमाण)

मैं वेद, उपनिषद्, स्मृतियों और पुराणोंको मानता हूँ; पर मैं गीताको शास्त्र-ज्ञानकी कुंजी मानता हूँ। गीतामें हमें यह बात मिलती है कि हमारे जीवन या आचरणकी रचना किन तत्त्वोंके आधारपर होनी चाहिये ? गीतामें समस्त शास्त्रोंका सार आ जाता है। इसलिये प्राकृत मनुष्योंको गीताके बाद किसी अन्य ग्रन्थको देखनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। —नीति-धर्म-दर्शन, पृ० ५२१

(गीताका संदेश)

......गीता जिसकी मार्गदर्शिका बनी हुई है, उसे कभी निराश नहीं होना पड़ता, अथवा यों कहें कि उसे आशा कभी रखनी ही न चाहिये।......निराशासे आरम्भ करनेपर उसके फल बड़े मधुर होते हैं।......निराशा भी मनकी एक तरंग है। इसलिये जो सावधान रहता है, उसे कभी निराशा नहीं होती; क्योंकि वह आशाको मनमें कभी स्थान नहीं देता।

—नीति-धर्म-दर्शन, पृ० ४९३

गांधीजी और धर्म

(लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

गांधी-शताब्दीके इन महीनोंमें सैकड़ों लेख देश और विदेशमें गांधीजीके सम्बन्धमें प्रकाशित हो रहे हैं। बड़े-बड़े सम्राट् तथा प्रधान मन्त्री उनपर अपने विचार प्रकट कर रहे हैं। भारतके राष्ट्रपति, प्रधान, उपप्रधान, मन्त्री आदिने भी जोरदार लेख लिखे हैं; पर ऐसा लगता है कि न जाने किस भयसे उन्होंने गांधीजीके धार्मिक विचारोंको या तो एक ओर रख दिया या उनपर लिखना ही उचित नहीं समझा।

रामायण

कुछ मामलोंमें उनके और सनातनी हिंदुओंके विचार नहीं भी मिलते, पर जहाँतक हिंदूधर्मका मौलिक तत्त्व है, वे कट्टर सनातनी हिंदू थे। रामायणके बड़े भक्त थे। यहाँतक कि गोस्वामी तुलसीदासको वाल्मीकिसे भी बड़ा संत मानते थे। जुलाई, १९१८में उन्होंने सी० एफ्० एँड्रूज़को अपने पत्रमें लिखा था कि 'तुलसीदास उन्हें बहुत प्रिय हैं।' रामायण और महाभारत दोनोंमें उन्हें बड़ी श्रद्धा थी। सन् १९२२ के अप्रैलमें उन्होंने लिखा था कि 'वे रामायणका नित्य पाठ करते हैं।' सन् १९१५में ही अपने एक पत्रमें उन्होंने लिखा था कि 'उनका सत्याग्रह दया, अक्रोध तथा अमानके हिंदू सिद्धान्तपर आधारित है।' यम-नियमका पालन हरेक व्यक्तिका वे कर्तव्य समझते थे। अयोध्याकाण्डकी इन पंक्तियोंका उन्होंने उद्धरण दिया था—

सिय राम प्रेम पीयूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनिमन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥

एकाग्रचित्त होकर कवि-संत तुलसीदासकी तरह ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करनेकी सलाह बापूने कई स्थानोंपर दी है। सन् १९१४ के मार्चमें उन्होंने कहा था कि 'गोस्वामी तुलसीदाससे सुख या दुःखमें राम-नाम जपना सीखो।' उसी वर्ष अप्रैलके महीनेमें उन्होंने कहा था कि 'जिस प्रकार रामायणमें देवता तथा मनुष्य दोनों राक्षसोंका संहार चाहते थे, हम भी कलियुगमें वैसे ही बुराइयोंका संहार करें।'

आत्मा-परमात्मा

सन् १९१० में श्रीमद्भगवद्गीतापर गांधीजीकी निष्ठा हो गयी थी। उसी साल मईमें उन्होंने लिखा था कि 'गीतासे ही मैंने सीखा है कि बिना मनपर काबू पाये शरीरके कार्योंपर नियन्त्रण नहीं हो सकता है।' सन् १९१३ में ही उन्होंने उपदेश दिया था कि 'संसारमें अपनेको नास्तिक कहनेवाले केवल एक बहाना करते हैं। ईश्वरकी सत्तामें विश्वास न करते हुए भी ईश्वरके आदेशोंका पालन करनेवाला वास्तवमें आस्तिक ही कहा जायगा। ब्रह्म-चिन्तन सत्य है। शेष सब मिथ्या है। पृथ्वीका सब कुछ अवास्तविक है। आत्माको भव-बाधासे छुटकारा देना ही होगा। मोक्ष प्राप्त करना ही हमारा लक्ष्य है। अन्यथा पुनर्जन्म तो होगा ही। भगवान्‌की बड़ी दया है कि हमको अपने पिछले जन्मकी याद नहीं रहती। जो बुरा कर्म करेगा, उसे अच्छी योनि नहीं प्राप्त हो सकती। अपना जन्म सुधारनेके लिये ज्ञान प्राप्त करना होगा और ज्ञान बिना भक्तिके प्राप्त नहीं हो सकता। भक्ति मोक्षके लिये आवश्यक है।'

सन् १९१८में वे लिखते हैं कि 'मैं धर्मका अर्थ समझता हूँ—अपनी प्रवृत्तियोंपर नियन्त्रण करना।' और सन् १९१९में उन्होंने लिखा—'मैं राजनीतिक व्यक्ति नहीं हूँ, धार्मिक व्यक्ति हूँ। राजनीतिमें इसलिये पड़ा हूँ कि वह भी धर्मका एक अङ्ग है। धर्मकी परिधिके बाहर कुछ भी नहीं है।'

गायत्री-जप

सन् १९३२ अप्रैलमें गांधीजीने लिखा था कि 'पिण्ड अपने शरीरको कहते हैं। ब्रह्माण्ड विश्व है। पिण्ड मिट्टीका है, पञ्चतत्त्वका है। पिण्डका वास्तविक ज्ञान हो जानेसे ही ब्रह्माण्डका ज्ञान होता है। इसीलिये शास्त्र कहता है कि ब्रह्माण्डका समूचा ज्ञान शरीर-पिण्डके ज्ञानसे प्राप्त हो सकता है। शरीरके धर्मका पालन करना ब्रह्माण्ड-धर्म है। इसीलिये श्रीकृष्णने गीतामें कहा है कि मनुष्यको अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये। गीतासे हमको 'स्थितप्रज्ञ' की जानकारी होती है। तभी हम ब्रह्मभूत भक्त तथा योगीका असली मर्म समझ सकते हैं। श्रीकृष्णने इन स्थितियोंको अनमोल ढंगसे समझाया है। इसीलिये वे योगेश्वर तथा पूर्ण अवतार थे। पर इनको भी समझनेके लिये भक्ति चाहिये। भक्तिके लिये जप आवश्यक है। तुलसीदासने ठीक लिखा है कि रामसे अधिक शक्तिशाली राम-नाम है।

जप एक साधना है। साधनाके बिना कुछ नहीं हो सकता। साधना निरर्थक नहीं जाती। इस जन्मकी साधना दूसरे जन्ममें आगे बढ़ायी जा सकती है—पूरी की जा सकती है। साधना करते-करते मोक्ष प्राप्त होता है।'

किंतु, गांधीजीके लिये सबसे बड़ी साधना थी—मनसे बुरे विचार निकाल देना तथा जैसा कि सन् १९२७में सितम्बर महीनेमें उन्होंने लिखा था—'अपवित्र मनसे तथा दूसरेके प्रति बुरी धारणा लेकर हम ईश्वरके सामने नहीं खड़े हो सकते।'

गांधीजी तपश्चर्यामें विश्वास करते थे। सन् १९२८ के दिसम्बरमें उन्होंने लिखा था कि 'केवल वेद पढ़नेसे काम नहीं चलेगा। धर्मका आचरण भी करना होगा।' इस कथनके १० महीने पहले वे लिख चुके थे कि 'अपने कल्याणके लिये नित्य-नियमितरूपसे गायत्री-जप करना चाहिये। बारह साल बाद, दिसम्बर, १९३२में उन्होंने 'निर्वाण' की व्याख्या की थी। उनके अनुसार 'अहंभाव'का नाश ही निर्वाण है।'

गायत्री-जप या रामनाम-जपको वे बहुत आवश्यक समझते थे। दिसम्बर, १९२६ में उन्होंने लिखा था कि 'जिस प्रकार बिना नहाये-धोये हमारा शरीर मैला और रोगी हो जाता है, उसी प्रकार बिना जपके, बिना प्रार्थनाके मन, हृदय तथा आत्मा अशुद्ध हो जाती है। प्रार्थना करते-करते ही हम भगवान्से सांनिध्य प्राप्त कर सकते हैं। भूलकर भी प्रार्थना मत छोड़ो।' वे लिखते हैं—

प्रार्थना

'मैं प्रातःकाल पुरुषोत्तमकी, उस सत्-चित्-आनन्दकी, उस भगवान्की प्रार्थना करता हूँ, जो मेरे अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करे, जिस अन्धकारमें मुझे रज्जु भी सर्पवत् दिखायी देती है। मैं उस भगवान्की प्रार्थना करता हूँ जिसे वेद नेति-नेति कहते हैं।' (३० दिसम्बर १९३०) 'मैं गुरुका अभिवादन करता हूँ। गुरु ही ब्रह्मा है, विष्णु है, महादेव है, ब्रह्म है।' (२५। १। १९३१) 'मैं मूर्तिपूजाका विरोधी नहीं हूँ, मैं स्वयं निराकारका उपासक हूँ।' (१७। ६। १९३२) 'मैं प्रार्थना करता हूँ कि मेरा मन-वचन शुद्ध रहे। मनुष्य जैसी प्रार्थना करेगा वैसा बनेगा।' (१३। ७। १९३२) 'ईश्वर सर्वज्ञ है। हम बिना उसकी जानकारीके कुछ नहीं कर सकते। ईश्वरको इस प्रकार सर्वज्ञ मानकर जो भजन करता है, वही निष्पाप हो जाता है और ईश्वरकी व्यापकता उसमें व्याप्त हो जाती है।' (१७। ७। १९३२)

मैं हिंदू हूँ

२ मई, १९३३ को गांधीजीने लिखा था—'मैं धर्म नहीं छोड़ सकता। इसीलिये मैं हिंदुत्व नहीं छोड़ सकता। यदि मेरा हिंदूधर्म मुझमें कमजोर हो जाय तो मेरा जीवन ही असफल हो जायगा। मैं ईसाई तथा मुस्लिमधर्मको हिंदूधर्मके द्वारा ही प्यार करता हूँ। मुझसे मेरा हिंदूपन निकाल लो तो मुझमें कुछ न रहेगा।' इस प्रकार वे कट्टर हिंदू थे।

मृत्यु

सन् १९२७से लेकर १९३४ तक गांधीजीने मृत्युके विषयमें पूरे शास्त्रीय विचार प्रकट किये थे। वे लिखते हैं—'मृत्युसे जुदाईका क्या सम्बन्ध? यह तो भ्रम है। जिसे शरीरके नाशवान् होनेका ज्ञान नहीं है, वही रात-दिन प्रियजनोंसे घिरा रहना चाहेगा। शरीर नष्ट होता है, आत्मा नहीं। मौतपर रोनेसे बढ़कर कोई मूर्खता नहीं है। यह मिट्टीका पुतला जबतक है, बना रहे। काँचकी चूड़ीसे भी ज्यादा कमजोर है यह। शरीरकी कितनी भी रक्षा करो, यह तो जायगा ही। कौन जाने कब चला जाय। मैं अपना काम कर रहा हूँ। भगवान्‌की जब इच्छा हो, इसे बुला ले। मुझे किसीके मरनेपर अब दुःख नहीं होता। मौतका नाम है छुटकारा। आत्मा बन्धनके बाहर निकलती है। मौतके सामने हम निस्सहाय हैं। यह लाचारी हमारी दुर्बलता न बनकर वीरत्वको जन्म दे। मृत्युका अर्थ है सो जाना—भूल जाना। मृत्युका अर्थ है पुनः जन्म लेना। ९ महीनेकी कैदके बाद बाहर निकले। जीवनभर अनेक दुःख उठाते रहे। अब सब कुछ भुलाकर आरामसे सो जायँगे, मृत्यु वास्तवमें जीवनके लक्ष्यकी उपलब्धि है।'

ऊपर हमने गांधीजीके धर्मसम्बन्धी कुछ अनमोल वचन दिये हैं। आजकी बढ़ती अधार्मिकतामें राष्ट्रपिताकी धार्मिक बुद्धि हमें मार्ग दिखाये।

मृत्युकी याद

(लेखक—श्रीराधाकृष्ण)

हमारे देशके पुराने संतोंकी दृष्टि दूर-दूरतक जाती थी। उन्होंने बार-बार हमें चेताया है कि "अरे मनुओं! माया ठगिनीके छलावेमें मत पड़ो, इस तनका कोई भरोसा नहीं। यह न जाने कब बताशेकी तरह गल जाय, कब बुलबुलेकी तरह मिट जाय या कब तमाशेकी तरह खत्म हो जाय। काल बड़ा बलवान् है। न जाने किस दिन बुलावा लेकर चला आवे और पुकार उठे कि 'अबतक बड़े सयाने बनते रहे, अब मैं तुम्हें लेने आ गया। यह धन-धाम, पुत्र-कलत्र, ठाट-ठस्सा यहीं छोड़ो और चलो मेरे साथ।' उस समय कोई तुम्हारे काम नहीं आयेगा और तुम्हें कालका कलेवा बनना ही पड़ेगा, कायाका कलेवर छोड़कर जाना ही पड़ेगा। बहाने और प्रार्थनाएँ वहाँ काम नहीं करेंगी, भागोगे तो कहाँ किधर भागोगे? तुम्हारा सारा धन-धाम यहीं रह जायगा और तुम कहीं और जा पहुँचोगे, जहाँ संसारकी भौतिक चीजें और रीतियाँ नहीं चलतीं। तुमने जो धर्म किया, परोपकार किया, वही तुम्हारे साथ जायगा। वही तुम्हारे काम आयेगा। वहाँ अर्थ नहीं, परमार्थ चलता है, घरवाले रोते रह जायँगे और रो-बिसूरकर चुप हो जायँगे, अड़ोसी-पड़ोसी दुःख-प्रकाश करेंगे और चुप होकर शान्त हो जायँगे; तुम हमेशा-हमेशाके लिये इस नाम-धामको छोड़कर चल दोगे। इसलिये हे मन! चेत जाओ; क्योंकि कब अचानक मौतका डंका बज जाय, कब मोती ढुलक जाय, कब हंसा उड़ जाय। उसके बाद क्या? उसके बाद तो तुमने जैसा किया, तुम्हारी आत्माको वैसा ही पाना है। अगर सांसारिक भोगोंमें लिप्त रहे हो, तो भव-भोगके आकर्षण अपने सौ-सौ हाथ बढ़ाकर तुम्हें अपनी परिधिमें खींच लायेंगे। यदि तुम संसारसे निर्लिप्त होकर यहाँ रहे हो, तो अपने नाम-रूपसे अलग होकर प्रभु-प्रकृतिमें लीन हो जाओगे। यहाँ मेरा-तेरा कोई नहीं, वहाँ जैसा किया वैसा पाना है। इसलिये चेत करो रे चोला! आनेवाली मृत्युका सोच करो।"

संतोंने सोचा था और ठीक सोचा था कि सदा अपनी मृत्युको याद करनेवाला कभी पतन और पापके पंकमें पड़ना नहीं चाहेगा। धन और धाम, कामिनी और कंचनकी माया-ममता उसे विशेषरूपसे नहीं व्यापे। क्षणभङ्गुर यह शरीर है, संसार दो दिनोंका मेला है, इसलिये थोड़े दिनके जीवनमें कौन पाप बटोरे, क्यों झूठी गवाही दे, क्यों पश्चात्तापकी गठरी ढोये? संतोंने सोचा था कि अपनी मृत्यु सदा याद आनेवाली चीज नहीं। इसलिये बार-बार मृत्युकी याद दिलानी चाहिये, बार-बार संसारकी असारताका स्मरण करना चाहिये। तब वह कौशलके साथ कर्म करेगा और 'योगः कर्मसु कौशलम्।' का मर्म समझेगा।

सचमुच संसारका आकर्षण बड़ा प्रबल है। मन यहाँ चुम्बककी तरह चिपक जाता है और छूटना नहीं चाहता। मृत्युकी याद नहीं आती। उसके सामनेसे मृत्यु रोज डंका बजाती हुई गुजर जाती है, मगर उसे अपनी ही मृत्युका स्मरण नहीं आता। वह भूला रहता है और अपनी प्रत्यक्ष मृत्युको अस्वीकार करके चलता है। यह सबसे बड़े आश्चर्यकी बात है, जैसा कि युधिष्ठिरने यक्षके प्रश्न (किमाश्चर्यमतः परम्) के उत्तरमें कहा था। हमारे संतोंने भी मनोविज्ञानके इस महान् आश्चर्यपर विचार किया था और सोचा था कि मृत्यु सहज याद आनेवाली चीज नहीं, इसलिये बार-बार इस बातकी याद दिलानी चाहिये। कभी समय आयेगा तो बात लग जायगी और वह मृत्युकी याद करेगा। मान लो, नहीं भी करेगा तब भी मृत्युकी बात उसके अवचेतनमें बैठ जायगी और वह पाप-अनाचारसे घबरायेगा। मान लो, वह अनाचारकी ओर चले भी तो समाजकी लाल आँखें देखकर आगे बढ़नेका साहस नहीं कर सकेगा। उसके मनमें मन्थन होता रहेगा और समाजकी दृष्टिसे गिर जाना उसके लिये मृत्युदण्डसे भी भयानक हो जायगा। ऐसी स्थितिमें समाजमें अनुशासन और सुव्यवस्था आयेगी।

उस समय युग कच्छप-गतिसे चलता था, आज उनचास पवनकी गतिकी तीव्रताको लेकर दौड़ता है। पुराना युग न जाने विस्मृतिके किस अन्धकारमें जाकर खो गया। आजका मनुष्य अपनी उँगलीकी पोरोंपर ताराओंको गिनता है, हथेलीपर उठाकर पृथिवीको तोलता है, महासागरकी गहराइयोंकी थाह लेता है और अपना एक पैर चन्द्रमापर रखकर धरतीके आकर्षणसे दूर मंगलमें

अपना निवास बनाना चाहता है। आजके मनुष्यके सामने असम्भव भी आज्ञाकारी दासके समान हाथ बाँधकर खड़ा है। उसके एक इशारेपर मेघ झूमने लगते हैं और दूसरे इशारेपर नदियाँ अपना जल लेकर उसके खेतोंमें पहुँच जाती हैं। मगर फिर भी आजका मानव उस समयकी अपेक्षा अधिक दुखी और निराश है। आज वह अपनी मृत्युको विस्मृत कर चुका है और उसके मनमें यह विश्वास प्रतिदिन दृढ़से दृढ़तर होता जाता है कि वह निकट भविष्यमें मृत्युको भी पराजित कर देगा। कदाचित् मृत्युकी भी मृत्यु न हो जाय। आज वह अपनेको अमर—अपराजेय समझता है और अपने जीवनका लक्ष्य भूलकर अशान्त भटक रहा है। कहीं शान्ति नहीं, कहीं सुख नहीं। सर्वत्र पाप और अनाचार, दुःख और उत्पीड़न, निराशा और घुटन! मनुष्यका रंग देखकर लोग उसकी आत्माको काला और गोरा बतलाते हैं और विश्वमें समता तथा शान्तिकी बातें करते हैं। क्या समता और शान्तिके लिये ही विनाशक परमाणु-बमोंका निर्माण हो रहा है? क्या मानवजातिकी एकताके लिये ही पारस्परिक शत्रुता, वैमनस्य और भेद-भाव फैलाये जा रहे हैं? समझमें नहीं आता कि वह पुराना मनुष्य कहाँ चला गया जो पापसे डरता था, सर्वनियन्ताके सम्मुख अपना सिर झुकाता था और अपने पड़ोसियोंसे प्रेम और मृदुताका व्यवहार रखता था? भगवान् और मृत्युको भूलकर वह कहाँ जा रहा है?

अगर अध्यात्म और ज्ञानकी बात लें, तो उस दिशामें भी आजका मनुष्य बड़ी ऊँची-ऊँची, सूक्ष्म और सारगर्भित बातें करता है। मगर वह सिर्फ बातें करता है। सच्चे अर्थोंमें अध्यात्म और ज्ञानसे आजका आदमी वञ्चित है। इस देशमें न जाने कितने सहस्र छात्र प्रतिवर्ष दर्शनशास्त्रका अध्ययन करके स्नातक हो रहे हैं, परंतु उनमेंसे कितने ऐसे हैं, जो भगवान्के दर्शनका तत्त्वचिन्तन करते हैं? परीक्षाकी बहीमें उसने दर्शन लिख दिया और उसे दर्शनशास्त्रका निष्णात मान लिया गया। फिर तो कौन दर्शनके लिये व्याकुलता और तत्त्वचिन्तनका अनुराग दिखलाता है और क्यों दिखलाता है? उसके हाथमें प्रार्थनापत्र है और वह नौकरीके लिये व्याकुल होकर इधरसे उधर दौड़ रहा है। ऐसी कागजी विद्यासे क्या लाभ? सर्वत्र भ्रष्टाचारका बोलबाला है। समाचारपत्रके पन्ने हत्या-आत्महत्या, चोरी-डकती, बेईमानी-ठगी, उत्पात और गबनके समाचारोंसे भरे रहते हैं। नीति-अनीतिकी परवा नहीं। आजके आदमीको केवल पैसा चाहिये, चाहे वह जैसे भी प्राप्त हो जाय। चाहे किसी प्रकार भी पैसा प्राप्त कर लो और बस, फिर सभी सुख तुम्हारे सामने हाथ बाँधकर खड़े हैं।

मगर क्या जीवनका यही लक्ष्य उचित है? क्या धनकी प्राप्तिसे ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है? पैसोंकी प्राप्तिके पीछे मनुष्य कितना पतित और किस प्रकार व्यर्थ हो जाता है इसका उदाहरण आजका युग है। नयी पीढ़ी इस व्यवस्थामें अपना भविष्य नहीं देखती और आज उसका विद्रोही स्वर उग्रसे भी उग्रतर होता जा रहा है।

पूँजीवाद, सामन्तवाद, एकाधिकार, साम्राज्यवाद आदिकी बुराइयोंको दूर करनेके लिये मार्क्सवाद आया। आज यूरप और एशियाका बहुत बड़ा हिस्सा साम्यवादको मानता है। मगर इससे भी शान्ति और तृप्ति नहीं दिखलायी देती। आज तो साम्यवादी राष्ट्र भी एक दूसरेके विरुद्ध बोलियों और गोलियोंसे आक्रमण करते हुए देखे जा रहे हैं!

असलमें पार्थिवताके आदर्शमें शान्ति नहीं है। शान्ति कहीं बाहरसे नहीं मिलती। उसे अपने भीतर खोजना पड़ता है। जिस प्रकार व्यक्तिके लिये यह सिद्धान्त सत्य है, उसी प्रकार राष्ट्र और विश्वके लिये भी यही सिद्धान्त लागू है। कोई राष्ट्र बड़ा-से-बड़ा ऋण लेकर धनवान् नहीं हो सकता, उसी प्रकार बाहरी सुख पाकर कोई भीतरी शान्ति नहीं पा सकता।

मगर शान्ति क्या है, इसे भी तो समझना जरूरी है। अगर आप बाहरसे शान्त और भीतरसे उद्विग्न हैं, तो क्या आपको सुखी माना जायगा? आज गलत परिभाषाएँ दी जा रही हैं और बाहरसे देखकर अन्तरका अंदाजा किया जाता है। आजकी सभ्यता बहिर्मुखी है। लोग बाहर-बाहर शान्ति और सुखकी तलाश कर रहे हैं। इन्द्रियोंको खींचनेवाले मनने बुद्धिको भी खींच लिया है और मनुष्य चारों ओर भटकता फिरता है। इस व्यवस्थामें शान्ति और सुखका लवलेश भी नहीं।

इसीलिये हमारे यहाँ मोक्षको ही परम पुरुषार्थ माना गया है। इसीलिये हमारे यहाँ संसारकी वासनाओंसे विरागका आदर्श रक्खा गया था। जबतक मनुष्य अपनी मृत्युको सदा याद नहीं करता, तबतक वह मोक्षकी प्राप्तिके लिये उन्मुख भी नहीं हो सकता। इसी कारण हमारे संत

हमें बार-बार मृत्युकी याद दिलाकर हमें सावधान कर देते थे और मनुष्य नीति-अनीति, पाप-पुण्यके अन्तरके विषयमें विचार करने लगता था। इस क्षणभङ्गुर जीवनमें वह अनीति और पापकी पगड़ी बाँधनेमें संकोचका अनुभव करता था। मृत्युके विचारको आधार मानकर वह परमार्थ-चिन्तनकी प्रेरणा पाता था, लोभ और भोगोंसे विरक्त होना चाहता था। यह कोई साधारण बात नहीं। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥
(२। ६०)

वासनाएँ साधक और विवेकशील मनुष्यतककी इन्द्रियोंको बलात्कारसे (विषय-भोगकी ओर) खींच लेती हैं। इससे साफ प्रकट हो जाता है कि मनुष्य कितना कमजोर है। उसे अपने ऊपर जरूरतसे ज्यादा विश्वास नहीं करना चाहिये। ऐसी अवस्थामें अवश्यम्भावी मृत्युके चिन्तनकी सीढ़ी लगाकर वह आसानीसे ऊपर उठनेका प्रयत्न करता था।

मृत्यु अटल है, मृत्यु ध्रुव है, मृत्यु अवश्यम्भावी है। जीवनकी अन्तिम परिणति मृत्यु ही है। उस मृत्युको अटल मानकर ठीकसे देख सकोगे, तब ही जीवनकी वास्तविकताका मूल्याङ्कन कर पाओगे। जीवनको ही देखते रहोगे तो मृत्युको भूलकर कुराहकी ओर चल देना स्वाभाविक है। जीवनको ही देखते रहोगे तो अपने-आपको शाश्वत मान लोगे। तुम्हें अपना जीवन अनन्त मालूम होगा। मालूम होगा जैसे मुझे इस संसारमें अनन्त कालतक रहना है। ऐसी अवस्थामें मनुष्य केवल अपने स्वार्थकी बात ही सोच सकता है। गरीबोंके प्रति करुणा रखकर भी वह दान और परोपकारके विषयमें नहीं सोच सकता। हमेशा हाय-हाय लगी रहेगी और सोचेगा कि किस तरह इतना धन इकट्ठा कर लें जो अनन्त कालतक काम देता रहे। जो मृत्युके बारेमें नहीं सोचता, उसे भोग आप-से-आप अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। इसीलिये अपने ऊपर मनुष्यको मृत्यु-चिन्तनका अंकुश रखना है। इसीलिये हमारे संतोंने बार-बार हमें मृत्युकी याद दिलायी है और संसारकी असारताका बोध कराया है। भगवान्‌को जानना कठिन है, वे सबके सामने प्रत्यक्ष भी नहीं होते; परंतु मृत्युको सभी जानते हैं, मृत्यु सबके सामने प्रत्यक्ष होती है।

इस मृत्यु-चिन्तनका भी दूसरा अर्थ लिया जा सकता है, ऐसा मैंने पहले कभी नहीं सोचा था। उस दिन एक मित्रके साथ बातचीत हो रही थी। सहसा उनकी एक बात सुनकर मैं चौंका। वे कह रहे थे कि हमारे कबीर-रैदास आदि संतोंने क्या किया है? उन्होंने बार-बार मृत्युसे डराकर हमें ईश्वरकी याद दिलानेकी कोशिश की है। यह तो जीवन-संग्रामसे विमुख होना है। हम सदा मृत्युसे डरते हुए कातर बने रहेंगे और जीवनमें कुछ भी नहीं कर सकेंगे।

मुझे उनकी बात पसंद नहीं आयी। मृत्युका भय ईसपकी कहानीके समान 'भेड़िया आया! भेड़िया आया!' नहीं है। मृत्यु अवश्य आती है और सबके पास आती है। मृत्युकी आशङ्का एक झूठा भय नहीं। मृत्युको भुलाकर या उसे झाँसा देकर कोई भी चल नहीं सकता। मृत्युको तुम भूल जाओ, परंतु मृत्यु तुम्हें नहीं भूल सकती। जीवनमें चाहे कुछ भी नहीं मिले; परंतु मृत्यु अवश्य मिलेगी। उस मृत्युकी याद दिलाकर संतोंने जनजीवनका असीम उपकार किया था। जो मृत्युको जानता है, वही जीवनका अर्थ समझता है। वह समस्त जीवन मृत्युके लिये ही तैयारी करता है और एक दिन मृत्यु आकर उसके जीवनको सार्थक करती है। मृत्यु भूलनेकी चीज नहीं, मृत्यु सदा सच्चे हृदयसे याद रखनेवाली चीज है। मृत्युसे भयभीत तो उन्हें होना चाहिये जिन्हें मरनेके बाद पीड़ाकी आशङ्का है। दास कबीरने चादर जतनसे ओढ़ी और 'ज्यों-की-त्यों धर दीनी चदरिया!'—ऐसा निःस्पृह भाव होना चाहिये। हमारे मनमें मृत्युके प्रति एक उमंग होनी चाहिये कि मैं प्रस्तुत हूँ, जब मृत्युकी इच्छा हो तब आ जाय। जीवनको सबसे पक्का, सबसे सच्चा ज्ञान मृत्युका ही होना चाहिये। उसके बाद उसे जो सोचना है सो सोचता रहे। हमें अपने संतोंके प्रति कृतज्ञ होना है कि उन्होंने बार-बार हमें मृत्युकी याद दिलायी है और संसारकी असारताका बोध कराया है। जो इससे शिक्षा लेता है, वह जीवनका सार प्राप्त करता है। जो इसे भूलकर चलता है, वह सदा-सर्वदा माया, मिथ्या, आवागमन और भव-भोगोंमें भटकता रहता है। उनका निस्तार नहीं।

अजीब दुःख ! विचित्र इलाज

[कहानी]

(लेखक—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम० ए०, पी-एच० डी०)

'मैं बहुत दुखिया हूँ । महाराजसे कुछ निवेदन करना है । मुझे अंदर जाने दीजिये ।'

'हर किसीको अंदर जानेकी आज्ञा नहीं है ।'

'लेकिन मुझे तो एक बड़े जरूरी कामसे महाराजसे मिलना है । किसी तरह मुझे तो उनसे मिला ही दीजिये ।'

'काम बताइये अपना ! किस सिलसिलेमें मिलना है ?'

'आप नाहक मुझे रोक रहे हैं । बड़ी दूरसे आयी हूँ ।'

उस सुन्दर युवतीको देखकर महाराज छत्रसालके भले द्वारपाल चकित रह गये । बार-बार पूछने लगे—'बहिन ! कहो तो, क्या बातें कहनी हैं । छोटी-छोटी बातोंके लिये महाराजको परेशान नहीं किया जा सकता । जब कोई बहुत बड़ा कार्य होता है, तभी उनसे मुलाकात करायी जा सकती है । हर कोई उनकी शान्ति नहीं भंग कर सकता । आपको क्या फरियाद करनी है ?'

युवतीने उत्तर दिया—'मैं अपने हृदयकी बात केवल महाराजसे ही निवेदन करना चाहती हूँ । सुना है, छत्रसाल सबके दुःख दूर करनेवाले हैं । उनके पास जो भी जाता है, मनचाही इच्छा पूर्ण करा लेता है। वे कर्णकी तरह दानशील भी हैं । मैं बहुत दुखिया हूँ······मुझे मिला दीजिये महाराजसे !'

सभी कौतूहलमें थे ।

सोच रहे थे कि क्या माँगेगी यह युवती ? शायद यह गरीबीमें फँसी है ! हो सकता है इसपर कोई भयानक जुर्म लगा हो ! सम्भव है कोई दुष्ट इसे परेशान करनेमें पीछे पड़ा हो ! आजके कामलोलुप समाजमें आवारागर्द लोगोंकी कमी नहीं है । शायद खेती-बाड़ीके लिये जमीन या अपने माँ-बापकी चिकित्साके लिये धनका सवाल करेगी ।

जितने मुँह उतनी ही बातें ।

'अच्छा, तुम्हारी नाजुक अवस्था देखकर हम विशेष परिस्थितिमें महाराजको सूचना दिये देते हैं ।' द्वारपालने कहा।

'आपकी बड़ी कृपा है । मैं बहुत दुखिया हूँ । वे ही मेरा कष्ट दूर कर सकेंगे ।' द्वारपाल छत्रसालसे पुकार करनेवाली युवतीकी सूचना देने अंदर गया ।

'एक तरुणी द्वारपर खड़ी है महाराज ! क्या उसे अंदर आने दिया जाय ?'

'तरुणी, युवतीका यहाँ क्या काम ? क्या सवाल है उसका ?'

'विशेष परिस्थितिमें उसकी सूचना देने आये हैं श्रीमान् ?'

'युवतीका आगमन जरूर कोई गुप्त रहस्य रखता है । पता नहीं, उसकी क्या समस्या हो ? हर एककी समस्या अलग-अलग है । परिस्थिति, उम्र, स्वभाव, चरित्र, स्वास्थ्य तथा गुप्त भावोंसे सम्बन्धित आदमीकी सैकड़ों उलझनें हैं । पता नहीं वह किस उलझनमें फँसी है ?' 'कैसी है वह स्त्री ?' महाराजने पूछा । 'महाराज, यही होगी पचीस-छब्बीस वर्षकी उम्र, देखनेमें सुन्दर है । बहुत समझाया किंतु वह मानती ही नहीं । निरन्तर यहाँ आनेकी जिद कर रही है।'

'युवतीसे एकान्तमें मिलना शास्त्रनिषिद्ध है। यह वासना पण्डित, ज्ञानी, वैरागी महात्माओंतकको परेशान कर सकती है ।······युवतीको देखकर प्रायः वासनाका उद्दीप्त हो उठना सहज स्वाभाविक है । ·····मनुष्यकी भोगेच्छा ही दुःख एवं अशान्तिका कारण हो सकती है । आजके बहुतसे आदमी इस भ्रान्त विश्वासके दास बने हुए हैं कि सुखका निवास वासनाकी पूर्तिमें है । अपने इसी विकृत विश्वासके कारण आजके युवक-युवती भोगोंमें लिप्त रहकर सुख-शान्तिकी सम्भावना नष्ट किया करते हैं·····।'

यह सोचते-सोचते महाराज छत्रसाल कुछ मौन हो गये ।

द्वारपालने फिर पूछा—

'महाराज ! उस युवतीको आने दिया जाय, या नहीं ?'

'अच्छा, उस युवतीको ले आओ । देखें, वह क्या चाहती है हमसे ? हमारे यहाँ भिक्षुक, जरूरतमन्द लोग, आर्थिक सहायताके लिये जब-जब भी आये हैं, हमने उनकी आवश्यकताएँ पूर्ण की हैं । परमात्मा वह आत्मबल दे कि यह शरीर परोपकारमें लगता रहे ।'

द्वारपाल चला गया ।

महाराजके मनमें विचारोंका ताण्डव मचा हुआ था । तरह-तरहके ख्याल नदीकी तरङ्गोंकी भाँति उठ रहे थे । वे सोच रहे थे—'मैं इतने धन, सम्पत्ति, समृद्धिका मालिक हूँ, फिर भी मनसे शान्त संतुलित नहीं हूँ । मेरा तो यह अनुभव बन रहा है कि सांसारिक पदार्थोंके संग्रहमें सुखकी कल्पना करना मरु-मरीचिका है । यदि वस्तुओं एवं भोग-पदार्थोंमें सुख-शान्ति रही होती, तो संसारमें एक-से-एक बढ़कर धनकुबेर तथा साधन-सम्पन्न व्यक्ति मौजूद हैं, वे पूरी तरह सुखी होते ।······दुःख अथवा अशान्ति उनके पाससे भी नहीं गुजरते······लेकिन मैंने ऐसा कहीं नहीं पाया है । मेरे-जैसे धनकुबेर, साधनसम्पन्न तथा वस्तुओंके भण्डारी एक साधारण गरीब आदमीसे भी अधिक व्यग्र, चिन्तित, दुखी और अशान्त देखे जाते हैं। पता नहीं, यह गरीब औरत क्यों दुखी है ? मुझसे किस चीजकी माँग करने आयी है ? मुझे उस दुखियाका कष्ट दूर करना चाहिये ।'

इतनेमें द्वारपाल उस युवतीको महाराजके सामने ले आये । युवतीने आदरसहित प्रणाम किया और एकटक महाराजकी ओर निहारती मन्त्र-मुग्ध-सी खड़ी हो गयी ।

'आपको क्या कष्ट है, देवि !' महाराज छत्रसालने सरल हृदयसे पूछा ।

युवती लगातार महाराजके पौरुषको देखनेमें डूबी हुई थी, जैसे चकोर चन्द्रमाके सौन्दर्यमें अपनेको भूल जाता है ।

महाराज छत्रसाल थे भी ऐसे ही सुन्दर ! उनके शरीरकी खूबसूरती तो थी ही, चारित्रिक सौन्दर्य उससे भी कहीं ऊँचा था । युवती उनके सौन्दर्यमें इतनी डूब गयी कि उसे स्मरण ही न रहा कि वह कुछ माँगने आयी थी ।

महाराज छत्रसालने पुनः दोहराया—'आप मेरे यहाँ कुछ कामना लेकर आयी हैं । ईश्वरने मुझे इस स्थितिमें रक्खा है कि मैं दीन-दुखियोंके कष्ट और संकट दूर कर सकूँ । मैं जनताका सेवक हूँ । सेवा करना मेरा धर्म है । जो जैसी सहायता चाहता है, मैं यथाशक्ति वह सहायता सदासे देता आया हूँ । आपको किसने सताया है ? जिस दुष्टने आपको कम आयुकी समझ दुखी किया होगा, मैं अवश्य ही उसे दण्ड दूँगा । आपको क्या कष्ट है ?'

युवती चुप थी । न जाने मनकी गुत्थी क्यों नहीं खोल रही थी । कुछ बात जिह्वापर आ-आकर रुक जाती थी । हृदय-पर भार बना था ।

'कहिये, आपको मेरी सहायता किस रूपमें चाहिये ?' महाराजने फिर पूछा । अब युवती कुछ होशमें आयी । क्या पूछे वह ? उसने फिर राजाको जाँचा ।

बोली—'आप मेरे कष्टको दूर करनेका वचन दें, तो निवेदन करूँ ।'

छत्रसाल विस्मित थे कि आखिर यह क्यों अपनी कठिनाई स्पष्ट नहीं कर पा रही है । कुछ कहती नहीं, चुप खड़ी, बस अपलक मेरी ओर निहार रही है ।

वे बोले—'मैंने अभीतक सभीके दुःखोंको यथासम्भव दूर किया है । मेरा दृष्टिकोण यही रहता है कि गरीबोंके कष्ट दूर हों । यदि मुझसे सम्भव होगा तो आपके कष्टोंको भी अवश्य दूर कर दूँगा । आप कहिये तो ।'

'एक शर्तपर कहूँ ? आप इन द्वारपालोंको बाहर भेज दीजिये । अकेलेमें वह बात कहूँगी । कुछ गुप्त बातें सबके सामने कहनेकी नहीं होतीं ।'

'अकेले में······ओह ! ऐसी क्या गोपनीय बात है ?'

'बस, इन्हें बाहर भेज दीजिये । यह प्रार्थना मान लीजिये ।' वह हठपर डटी रही ।

'अच्छा, मैं द्वारपालोंको बाहर भेज देता हूँ ।'

एक संकेतपर द्वारपाल बाहर चले गये । अब वहाँ महाराज छत्रसाल और उस युवतीके अतिरिक्त तीसरा कोई न था ।

'अब ठीक है' युवती बोली । 'क्या बताऊँ, बात ही ऐसी थी जो किसीके सामने कहनेकी न थी । मजबूरी थी ।'

'खैर, अब कहिये ? आपको क्या कष्ट है ?'

वह फिर कुछ लज्जित-सी हुई । कपोलोंपर हल्की-सी सुर्खी आ गयी ।

'मेरे कोई संतान नहीं है ।' युवतीने रुकते-रुकते कहा ।

'संतान नहीं है ! अभी तो आप युवती हैं । जिंदगीका एक लम्बा समय आगे पड़ा हुआ है।···धैर्य रखिये ।'

'मेरे पति इसमें असमर्थ हैं !'

'यह क्या पता ? भविष्य बलशाली है । ईश्वरकी कृपासे सबकी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं । प्रजनन प्रकृतिको

अपनी सृष्टि-संचालन-व्यवस्थाको चलाते रहनेके रूपमें आवश्यक है। इसलिये उसने प्राणियोंको ऐसे वासनाजालमें जकड़ दिया है कि आमतौरसे उन्हें इस गोरखधंधेको सुलझानेमें अपना जीवन-क्रम पूरा करना पड़ता है। पुरुषोंमें प्रबल वासना और स्त्रियोंमें तीव्र मातृत्वकी भावना नहीं होती, तो शायद इस सृष्टिका क्रम पहले ही रुक गया होता। विषय-भोगकी क्षुद्र इच्छाएँ ही संतानके प्रति ममता, नाना प्रकारकी तृष्णाओं तथा माया-मोहके जालमें मनुष्यको फँसाये रखती हैं और इस सृष्टिके काम विधिवत् चलते रहते हैं। विषय-भोगकी मिथ्या कल्पनाओंमें ही मनुष्य-जीवनका सारा ताना-बाना चलता रहता है। आप धैर्य रक्खें, शायद प्रकृति स्वयं ही आपकी संतानकी लालसाको पूर्ण कर देगी। आपकी गोद खाली न रहेगी। ईश्वर सबकी सुनता है।'

'ओह! आप मेरा मतलब नहीं समझे।' उत्तेजित युवतीने कहा। 'आखिर, क्या कहना चाहती हैं आप? स्पष्ट बात कहिये। आपका मतलब क्या है?'

'मेरा मतलब''' मैं यह कहना चाहती हूँ कि मुझे आपके समान पुत्र चाहिये।'

'मेरे समान पुत्र!' आश्चर्यसे महाराज बोले। 'मैं अब भी नहीं समझा। क्या तात्पर्य है आपका?'

'जैसा पिता होता है, वैसा ही उसका पुत्र जन्मता है। मनुष्यकी अतृप्त इच्छाओंकी पूर्ति पुत्र या पुत्रीके माध्यमसे हुआ करती है। पुत्रको गुणी, विद्वान्, सदाचारी, पौरुषवान् पाकर सभी अपना गौरव समझते हैं। पुत्रीकी अपेक्षा पुत्रसे यह सौभाग्य प्राप्त करनेकी अधिक आशा की जाती है। मुझे आप-जैसा पुत्र चाहिये।'

महाराज छत्रसाल यह सुनकर गहरे विचारमें निमग्न हो गये। उन्हें मालूम हुआ कि यह स्त्री वासनाके चंगुलमें फँसी हुई है। प्रणय-निवेदनका अभिनय कर रही है।

वे बोले—'पुत्रमें क्या धरा है। पुत्र आगे चलकर पिताका नाम रोशन करता है, यह सोचना बिल्कुल फजूल है। संसारमें कितने लोग मरकर चले गये, इनमेंसे कितने सौभाग्यवान् ऐसे हैं, जिन्हें उनके बेटोंके द्वारा यश मिला है? यश तो आदमीके खुदके त्याग, तप और श्रेष्ठ कर्मोंसे मिलता है। इनके लिये निःसंतान होना कोई बाधा नहीं है, देवि!'

इन शब्दोंसे भी युवती महाराजकी उदात्त भावनाका संकेत न समझ सकी। वह उन्हें साधारण स्तरका विषया-सक्त राजा मात्र समझती रही, जो अनेक रानियाँ रखते हैं और हरदम ढलती आयुतकमें नयी युवतियोंसे विवाहके इच्छुक रहते हैं। फिर अपना प्रणय-निवेदन करती हुई बोली——

'महाराज! मुझे पुत्र नहीं, आपके-जैसा सुन्दर, सर्वगुणसम्पन्न, पौरुष और यौवनसे भरा-पूरा बेटा चाहिये। जैसा पिता होता है, उससे वैसे ही पुत्रका जन्म होता है। आप मेरा संकेत नहीं समझ रहे हैं। एक नारीके हृदयकी वेदना''' छिः छिः आपके हृदयकी जगह पत्थर लगे हैं। आप मेरे कष्टको दूर कीजिये। मैं बहुत दुखिया हूँ। मुझे आपके समान पुत्र चाहिये। मुझे आप ही स्वीकार कर लीजिये। अपनी छत्र-छायामें शरण दीजिये। राजा असहायोंको सहायता और शरण देनेवाला कहा गया है।'

महाराज छत्रसाल उस कामासक्त युवतीको क्या उत्तर दें! वे सोच-विचारमें डूब गये। मानसिक उलझनमें फँसे थे। उनके चरित्रकी परीक्षा हो रही थी।

क्या उत्तर दें जिससे यह वासनालोलुप रमणी ठीक रास्तेपर आ जाय? भारतकी पुरानी प्रशस्त परम्पराकी मूर्तियाँ उनके सम्मुख एक-एककर घूमने लगीं। ब्रह्मचर्य, संयम, इन्द्रिय-निग्रह—हमारे यहाँ यों ही नहीं पूजे गये हैं। इनके पीछे उन्नति और मानव-प्रगतिके मूलमन्त्र छिपे हुए हैं। पर ये बातें कैसे समझायी जायँ इस विषयान्ध युवतीको? उनके मनमें विचारोंका सागर लहरा रहा था।

उधर युवती समझी कि उसकी वासना-पूर्ति होने-वाली है। हलकी-सी मुसकान उसके चेहरेपर थिरकने लगी। वह उत्साहसे देखने लगी महाराजका दीप्त मुख-मण्डल!

'आपको मेरे समान ही तो पुत्र चाहिये न?' महाराजने फिर पूछा। 'जी हाँ, ऐसा ही सुन्दर, ऐसा ही तेजस्वी, ऐसा ही मोहक——मादक, समस्त गुणोंसे परिपूर्ण।'

'माता! आजसे इस छत्रसालको ही आप अपना पुत्र समझिये!' महाराजने कहा।

युवती घबरा गयी, बोली—'हैं, मेरे लिये 'माता' शब्दका प्रयोग—उफ ! यह क्या कह डाला आपने। मैं और आपकी माता—नहीं नहीं, माता नहीं, माता नहीं।'

'मैंने आपको अपनी 'माता' मान लिया''सदा-सर्वदाके लिये बस, अब आप मेरे-जैसे सुन्दर पुत्रको पा गयी हैं। मुझे आपसे कोई नहीं छीन सकता। आप मेरी माता। मैं आपका पुत्र ! पवित्रतम सम्बन्ध। माता ! लो, इस पुत्रको स्वीकार करो। अब आप मेरी पूज्या हो गयीं; लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती-जैसी ऊँची, उन्हींकी तरह पूजनीया।'

युवती चुप थी। अपनी कामान्धतापर उसे लज्जा आ रही थी। कितने पवित्र हैं महाराजा !

उस दिनसे महाराजने उस युवतीको निज जननीके रूपमें ही स्वीकार किया और उसके साथ सदा वैसा ही व्यवहार करते रहे। धन्य !

आत्मनिवेदनपर एक दृष्टि

(लेखक—प्रो० श्रीराधेश्यामजी रस्तोगी)

[पूर्वप्रकाशितसे आगे]

एक संतने एक बार अपनी मौलिक उद्भावना व्यक्त की थी—'भक्त अपनेको समर्पणके लिये रखता है, और कुछ करनेके लिये नहीं। किंतु उसे और कुछ नहीं करनेके लिये बहुत कुछ करना होता है। इसे निम्नलिखित रूपमें स्पष्ट किया जा सकता है—

१-प्रारम्भमें तीव्रतासे अनुभव करना चाहिये कि यह पुष्टि, सृष्टिसे सम्बन्धित है और ईश्वरके अंदरसे अग्निसे चिनगारीकी भाँति प्रकट हुई है। यह तो सांसारिक शोषण और लगाव है, जो बार-बार ईश्वरसे दूर ढकेल देता है।

२-ईश्वरकी कृपाके लिये पूर्ण आस्था होनी चाहिये, जिसके प्रति हम समर्पित होते हैं। ईश्वर समत्वभावसे दयालु और सर्वशक्तिमान् है, इस पूर्ण आस्थाकी वृद्धिके साथ ही ईश्वरकी कृपा और संरक्षकता हमारे लिये बढ़ जाती है।

३-जैसा कि श्रीवल्लभाचार्यने अपने 'नवरत्न' नामके ग्रन्थमें कहा है—

> निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः।
> सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति॥

'हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जो सभीका स्वामी और सभीका आत्मा है, अपनी इच्छासे ही सब कुछ करेगा।'

४-चिन्ता और व्याकुलताका त्याग करना आवश्यक है। जिसने ईश्वरके लिये आत्मार्पण कर दिया है, उसे कभी व्यग्र नहीं होना चाहिये; क्योंकि ईश्वर कभी भी लौकिक प्रभुवत् त्याग और उपेक्षा नहीं करता। जिन्होंने प्रभुको आत्मनिवेदन किया है, उनको कभी किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। अनुग्रहपरायण भगवान् अङ्गीकृत जीवोंकी लौकिक गति नहीं करेंगे।

> चिन्ता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापीति।
> भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम्॥
>
> (नवरत्नम्)

> तथा निवेदने चिन्ता त्याज्या श्रीपुरुषोत्तमे।
> विनियोगेऽपि सा त्याज्या समर्थो हि हरिः स्वतः॥
>
> (नवरत्नम्)

इस प्रकार श्रीपुरुषोत्तममें निवेदन और अन्यके विनियोगके विषयमें चिन्ता छोड़ देनी चाहिये; क्योंकि प्रभु स्वतः सब कुछ करनेमें समर्थ हैं।

> चित्तोद्वेगं विधायापि हरिर्यद्यत् करिष्यति।
> तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत्॥
>
> (नवरत्नम्)

'श्रीप्रभुकी सेवा करते हुए, किसी समय भगवान् चित्तमें उद्वेग कराकर जो-जो करेंगे, उनकी वैसी ही लीला अर्थात् खेल मानकर बहुत शीघ्र चिन्ताका त्याग करें।'

५-धैर्य और आश्रय

मरणपर्यन्त सब प्रकारसे सदैव त्रिविध दुःखोंको सहन करना धैर्य है। (त्रिदुःखसहनं धैर्यमामृतेः सर्वदा सदा)

और (भार्यादीनां तथान्येषामसतश्चाक्रमं सहेत् ।) अर्थात् 'स्त्री-पुत्रादिके, दूसरोंके और असत्-पुरुषोंके अतिक्रमणको सहन करना चाहिये ।'

श्रीवल्लभाचार्यजी अपने 'विवेकधैर्याश्रय' ग्रन्थमें कहते हैं—

'ऐहिके पारलौके च सर्वथा शरणं हरिः ।' अर्थात् 'इस लोकमें और परलोक-सम्बन्धी विषयोंमें श्रीप्रभु ही आश्रय हैं ।'

दुःखहानौ तथा पापे भये कामाद्यपूरणे ॥
भक्तद्रोहे भक्त्यभावे भक्तैश्चातिक्रमे कृते ।
अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः ॥
(विवेकधैर्याश्रयनिरूपणम्)

अर्थात् 'दुःखहानिमें, पाप, भय और इच्छाओंकी असफलतामें, भक्तद्रोह अथवा भक्तिके अभावमें भक्तोंके द्वारा अतिक्रमणसे अर्थात् दुःख प्राप्त होनेमें तथा इस प्रकारकी अन्य शोचनीय अवस्थामें भगवान्‌का आश्रय ही उचित है ।'

अहंकारकृते चैव पोष्यपोषणरक्षणे ।
पोष्यातिक्रमणे चैव तथान्तेवास्यतिक्रमे ॥
अलौकिकमनःसिद्धौ सर्वथा शरणं हरिः ।
एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्तयेत् ॥
अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेव च ।
प्रार्थनां कार्यमात्रेऽपि ततोऽन्यत्र विवर्जयेत् ॥

अर्थात् ''अहंकार हो जानेपर अथवा पोष्यवर्गका भरण-पोषण करनेके लिये, पोष्यवर्ग या सेवकोंके द्वारा दुःख दिये जानेपर—इस प्रकारकी सभी स्थितियोंमें अलौकिक मनकी सिद्धिके लिये हरिकी ही शरणमें जाना चाहिये और इस प्रकारके चिन्तनमें मुखसे 'अष्टाक्षर-मन्त्र' (श्रीकृष्णः शरणं मम) का उच्चारण करते रहना चाहिये । दूसरे देवताओंका भजन और स्वयं वहाँपर जाना और किसी भी कार्यके लिये उनसे प्रार्थना करना—इन तीनों बातोंको त्याग देना चाहिये ।''

६—प्रार्थना-परित्याग

प्रार्थितेन ततः किं स्यात् स्वाम्यभिप्रायसंशयात् ।
सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव च ॥

अर्थात् 'स्वामीके अभिप्रायमें संदेह होनेके कारण अथवा प्रार्थना करनेपर भी क्या होगा; क्योंकि उनका सर्वत्र सब कुछ है और उनमें सर्वसामर्थ्य है ही ।' सारांश यह है कि भगवदिच्छाको समझनेमें जीव असमर्थ है और प्रभु सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् होनेके कारण सेवकके हितके लिये सब कुछ करेंगे । पुष्टिमार्गीय भक्त प्रभुसे किसी बातके लिये कभी प्रार्थना न करें ।

७—गुरुके आदेशका सचेततासे अनुग्रहण करना चाहिये ।

श्रीवल्लभाचार्यजीके बहुत महत्त्वपूर्ण आदेश उनके लघुग्रन्थ 'चतुःश्लोकी'में मिलते हैं—

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः ।
स्वस्यायमेव धर्मो हि नान्यः क्वापि कदाचन ॥
एवं सदास्य कर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति ।
प्रभुः सर्वसमर्थो हि ततो निश्चिन्ततां व्रजेत् ॥
(चतुःश्लोकी)

अतः सर्वात्मना शश्वद् गोकुलेश्वरपादयोः ।
स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः ॥

अर्थात् 'सदैव सर्वभावसे श्रीव्रजाधिप श्रीकृष्ण भजने-योग्य हैं । अपना (जीवात्माका) यही धर्म है । किसी देशमें और किसी कालमें श्रीकृष्णकी भक्तिके अतिरिक्त दूसरा कोई धर्म नहीं है ।'

'इस प्रकार सदैव सेवारूप स्वधर्मका पालन करना चाहिये और प्रभु स्वयं अपना कर्तव्य पूर्ण करेंगे । श्रीप्रभु सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, यह समझकर भक्त निश्चिन्त रहे ।'

'और सब प्रकारसे सदैव श्रीगोकुलेशके चरणकमलका स्मरण और भजन त्याग करने योग्य नहीं है । इस प्रकारकी मेरी सम्मति है ।'

पुनः 'नवरत्न'में उन्होंने स्पष्ट किया है—

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम ।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः ॥

''इसलिये सब प्रकार सदैव 'श्रीकृष्णः शरणं मम'का उच्चारण करते रहना चाहिये, यह मेरी सम्मति है ।''

'सिद्धान्तमुक्तावली'में मानसी-सेवाको उन्होंने सर्वोत्तम कहा है—

कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता ॥ १ ॥

'हमें सदा श्रीकृष्णकी सेवा करनी चाहिये और सेवाओंमें मानसिक सर्वोत्तम है ।'

अपने प्रसिद्ध स्तोत्र 'श्रीकृष्णाश्रय'में उन्होंने बल देते हुए कहा है—

कृष्णाश्रयमिदं स्तोत्रं यः पठेत् कृष्णसंनिधौ ।
तस्याश्रयो भवेत् कृष्ण इति श्रीवल्लभोऽब्रवीत् ॥

अर्थात् 'जो कोई भी 'श्रीकृष्णाश्रय'के इस स्तोत्रका पाठ श्रीकृष्णकी संनिधिमें करता है, वह भगवान् श्रीकृष्णको अपने रक्षकके रूपमें पाता है ।'

पुरुषोत्तमके माहात्म्यमें श्रद्धा

गुरुके निर्देशका बड़ी तत्परता और भक्तिभावसे अभ्यास करना चाहिये । यदि हम पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके माहात्म्यको अनुभव करते हैं और सचमुचमें इतना अधिक अनुभव करते हैं तो—

(क) उनके नामके जपसे हमारे पाप अग्निमें सूखी झाड़ियों-जैसे नष्ट हो जायँगे ।

(ख) कोई भी दोष ऐसा नहीं है, जिससे जप और सेवाके द्वारा मनुष्य मुक्त न हो सके ।

(ग) ईश्वर अपने भक्तोंपर सर्वोत्तम आशीर्वादोंकी झड़ी लगा देते हैं ।

ईश्वरको प्रत्येक कार्यका समर्पण

इस सम्बन्धमें गीतामें श्रीकृष्णका सुझाव सर्वथा उदाहृत है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥
(९ । २७)

अर्थात् 'हे कुन्तीपुत्र ! तू जो कुछ करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ स्वधर्माचरण तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर ।'

इन पंक्तियोंकी व्याख्या करते हुए डा० राधाकृष्णन्ने कहा है—

'आत्मसमर्पणका यही परिणाम होता है कि सभी कार्य ईश्वरसे सम्बन्धित हो जाते हैं । जीवनमें अनुदिन सामान्य कार्योंका प्रवाह भगवत्-सेवाके माध्यमसे होना चाहिये । ईश्वरके प्रति प्रेम, जीवनकी कठोरतासे पलायन नहीं है, वरं सेवाका समर्पण है ।'

ये पंक्तियाँ स्पष्ट करती हैं कि किस प्रकार जीवनकी सम्पूर्ण क्रियाओंके द्वारा, निष्ठा-भक्तिके समर्पण-भावसे ईश्वरके समक्ष प्रस्तुत हुआ जा सकता है, जब कि हम जीवनके प्रति छूँछे अहंकारमें जी रहे हों । यह निष्ठा-भक्ति और समर्पण-भाव अनावश्यक आरोपित-विश्वास नहीं है और न चिन्तन-मननकी अतिशयता ही । जब सारी क्रियाएँ समर्पणके भावसे सम्पन्न होती हैं, तब न केवल परमात्माके प्रति (हमारी अन्तरात्मामें) प्रेमकी वृद्धि होती है, अपितु हमारा आन्तरिक जीवन (अन्तर्मन) सदुद्देश्यों और दैवी लक्ष्योंके साथ पापमुक्त हो जाता है ।

समर्पण और त्यागका यह मार्ग अनुकरणीय है; क्योंकि—

१. यह आत्माका स्वभाव है और प्रत्येक प्राणीमें उस परमेश्वरके आदर्शकी पूजा और सेवाभावकी मूलप्रवृत्ति होती है, जो उसके हृदयकी गहराइयोंमें संनिहित होती है ।

२. यह सभी भूतकालिक क्रियाओंके दोषों और हृदयके पापोंको नष्ट कर देता है और संशुद्धिके बाद ईश्वरको प्रस्तुत करता है ।

३. यह सर्वसुलभ है, चाहे किसी जाति या धर्मके सदस्य हों, या जीवनके किसी भी स्तर या शिक्षाके लोग हों ।

४. इसमें अन्तिम सफलता निश्चित है ।

इस चतुर्थ क्रमके निदर्शनके प्रमाणके रूपमें भगवान श्रीरामचन्द्रजीका एक विश्रुत व्रत उल्लेखनीय है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥

अर्थात् "वह जो मुझे अपनेको समर्पित करता है और एक बार भी कहता है—'हे स्वामी ! मैं तेरा हूँ,' मैं उसे सभी पदार्थोंके आतंकसे मुक्त करता हूँ, यह मेरा पवित्र-व्रत है ।"

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी एक मर्यादापुरुषोत्तमके रूपमें इस संसारमें अवतरित हुए थे । एक बार भी श्रीरामने जो कहा, उसका पालन किया । अपने कथनका उन्होंने उल्लङ्घन नहीं किया—

'रामो द्विर्नाभिभाषते ।'

उपर्युक्त ब्रह्मवाक्यके अनुसार जो एक बार ईश्वरमें समर्पित होता है, उसे ईश्वर स्वीकार करता है और पूर्ण अभय प्रदान करता है ।

गीतामें श्रीकृष्णजीके व्रत और प्रदत्त-विश्वास भी कम नहीं हैं। अन्तिम अध्यायमें हमें उनका उद्घोष और आह्वान मिलता है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
(१८। ६५-६६)

अर्थात् 'मुझ परमात्मामें अपने मनको स्थिर बनाओ, मेरे प्रति भक्तिभावसे पूर्ण हो मुझमें समर्पण करो, मेरे समक्ष साष्टाङ्ग नमित हो। इस प्रकार तुम मुझे प्राप्त होओगे। मैं तुमसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; क्योंकि तुम मुझे प्रिय हो।'

'सभी आश्रयोंका त्याग कर मुझमें अनन्य-शरण ले। शोक मत कर, मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा।'

इन श्लोकोंके पूर्वार्द्धमें हम श्रीकृष्णकी विश्वस्त सान्त्वना पाते हैं।

'मन्मना भव' का तात्पर्य है कि 'केवल मुझ सच्चिदानन्दघन, वासुदेव परमात्मामें ही अनन्य प्रेमसे नित्य-निरन्तर अचल मनवाला हो।' यह जानते हुए कि परमात्माका कथन सत्य है, ईश्वरकी श्रद्धा सर्वोपरि और मूल आश्रयके रूपमें करनी चाहिये। हमें एक सहज निरन्तर विश्वस्त-समर्पणमें लगे रहना चाहिये।

ईश्वर हमें पुनः अपने पास प्राप्त कर अपना स्वभाव, अपनी कृपा, अपना प्रेम, अपनी उत्सुकता प्रकट करता है। वह हममें प्रवेश करने और हमको अपने अधीन करनेके लिये प्रतीक्षामें है, यदि हम केवल उसके सम्मुख अपना हृदय खोल सकें। ईश्वरका प्रेम हमारी आत्माओंमें छटपटा रहा है और यदि हम इसे उसके शाश्वत आगमनके लिये खोल सकें, तो वह हमारी अन्तरात्मामें प्रविष्ट हो जायगा। हमारे स्वभावको शुद्ध और प्रखर बनायेगा और हमें जाज्वल्यमान प्रकाशकी भाँति तेजोमय बना देगा।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी वाणीमें—

'क्या तूने उसके नीरव पदचाप नहीं सुने ?
वह आता है, आता है, और सदा आता है॥'

दूसरे श्लोकमें ईश्वरका व्रत है कि 'यदि हम सभी आश्रयोंका त्याग कर उसमें आश्रय लें, तो वह हमें सभी पापोंसे मुक्त कर देगा।' जब हम उसकी ओर मुड़ते हैं और अपनी सम्पूर्ण आत्माको समर्पित कर देते हैं, तब हमारे उत्तरदायित्वोंका अन्त हो जाता है। वह हमें सभी दुःखोंके परे ले जाता है। यद्यपि ईश्वर निश्चित नियमोंके द्वारा ही इस विश्वका संचालन करता है और हमसे अपेक्षा करता है कि हम अपनी प्रकृति और जीवनके ठहरावपर आधारित समुचित क्रियाओंके द्वारा इसकी पुष्टि करें, फिर भी यदि हम उसका आश्रय लेते हैं, तो इन सबसे परे हो जाते हैं।

यही भगवत्कृपाका रहस्य है। वह अनुग्रह, जो उसकी सर्वव्यापी सामान्य दैवी-करुणासे परे है, और जो अपरिमित तथा कल्पनातीत है, उनपर समान रूपसे प्रस्फुटित होता है, जो अपनेको इसके लिये समर्पित करते हैं। इस सम्बन्धमें श्रीकृष्णप्रेमने समुचित प्रकाश डाला है—

"एक ही चीज आवश्यक है कि हम उन आश्रयोंका त्याग कर दें, जिनपर हम अबतक खड़े रहे और अपने आपको उनके मूल्यों और सुरक्षाके अर्थ-विस्तारके प्रयत्नमें उलझाये रक्खा। जाति और वर्ण-आश्रमके आधार, धन और सामाजिक स्थितिके आधार, शिक्षा और गुणके आधार अर्थात् वे सभी आधार सचमुचमें जिनके द्वारा हम यह कहते हैं कि 'मैं हूँ, मैं जो इस संसारमें विना महत्त्वका नहीं है।' इस प्रकारके भ्रमको छोड़कर एकमात्र ईश्वरका आश्रित होना चाहिये, जो कि सम्पूर्ण जगत्का पालन करनेवाला है।...... तब मुक्त-आत्माके पास, निहित स्वार्थोंके मोहसे मुक्त होनेपर तथा उन्मुक्त-भावसे अपनेको शाश्वत-स्वतन्त्र श्रीकृष्णके हाथोंमें सौंपते हुए प्रेमका उपहार प्राप्त होगा।"

'सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।'

डरो नहीं, मैं तुझे सभी पापोंसे मुक्त कर दूँगा।

दैनिक जीवनमें आत्मनिवेदनका उपयोग

एक पाश्चात्य लेखक, जिसने सम्पूर्ण भारतकी विस्तृत यात्रा की तथा हमारे धर्म और धर्मोपदेशकोंका अन्वेषणात्मक साक्षात्कार किया, इस निष्कर्षपर पहुँचा है कि— 'आत्मनिवेदन एक सरल अभ्यास है, जो सभी प्रकारके ध्यान और चिन्तनका स्थान ले सकता है। जब यह स्वाभाविक गतिमें आ जाता है, तब सर्वथा सहज और अनायासित हो जाता है। ठीक वैसे ही जैसे एक माँ युद्ध-

क्षेत्रमें गये हुए पुत्रकी सुरक्षाके लिये व्याकुल होती है और उसे कभी भी नहीं भूल पाती, चाहे जो भी व्यवहार या क्रियाएँ उसकी बाह्य-व्यस्तताकी कारण हों। इसी प्रकार ईश्वरके प्रारम्भिक आश्रयमें उसे (परमात्माको) विस्मृत नहीं करना चाहिये, चाहे बाह्य-व्यावहारिकतामें हम जो भी कार्य कर रहे हों। मूलभूत लक्ष्य यह है कि इस अभ्यासको मस्तिष्कमें शाश्वत भावसे रखना चाहिये, जब कि हम प्रस्तुत कार्यमें संलग्न हों। ध्यानको व्यग्रताके साथ उस ओर संचरित होने देना चाहिये और अपेक्षाकृत अधिक पूर्णताके साथ उसे प्रत्येक समय वापस कर लेना चाहिये। इससे बाह्य-कार्योंके लिये एक नयी स्फूर्ति भी मिलती रहती है। निश्चित ही यह उसकी व्यक्तिगत आकर्षण-शक्तिका अघोषित और अव्यक्तिगत केन्द्र होता है; एक ऐसी धुरी होता है, जिसपर बाह्य-क्रियाओंका दोलक निरन्तर आगे-पीछे संचरित होता है। यद्यपि, इस प्रकार उसकी चेतनताका निकटतम दृश्य दैनिक जीवनके कार्योंमें उपस्थित व्यस्तताका प्रतीक होता है, तथापि उनकी आन्तरिकता एक पवित्र मुक्तभावकी होती है, जहाँ ईश्वर-चिन्तनके अतिरिक्त अन्य विचार प्रविष्ट ही नहीं हो सकते। जब यह अभ्यास निश्चित हो जाता है और निरन्तर एक सफल प्रवाहके रूपमें सिद्ध हो जाता है, तब परमात्माका अनवरत स्मरण उसके लिये कृपाका एक अद्वितीय फल हो जाता है और जो शक्ति यहाँ क्रियाशील होती है, वह 'अहं' की नहीं, अपितु सर्वव्यापी शक्ति होती है। जब यह दैवी कृपा कार्य करने लगती है, तब असंख्य आन्तरिक और बाह्य विघ्न इस मार्गसे हटते हुए प्रतीत होते हैं। कभी-कभी प्रत्यक्ष रूपमें इसका व्यवहार विलक्षण होता है, परंतु अन्तमें उसे अधिकतम सत्यकी आत्मचेतनताके निकट ला देती है।

यदि कोई इस अभ्यासके अनुग्रहणके लिये तैयार नहीं है, तो उसे दूसरे सुझाव दिये जा सकते हैं, जो कि उसके समक्ष कोई माँग नहीं प्रस्तुत करते······। जब कभी उसे अप्रत्याशित दुर्भाग्यका सामना करना पड़े या अप्रसन्नताका वातावरण हो, जब दुःखद समस्याएँ अपने घृणित सिर उठाने लगें या जब मृत्युका भय उसके अस्तित्वको खतरेमें डाल दे, तब उसे बाह्य जीवनकी स्थितियोंके प्रति व्यावहारिक मानदण्डोंको ग्रहण करना चाहिये और अन्ततः उनकी समाप्तिके लिये बलपूर्वक अहंता-केन्द्रित आचरणका त्याग कर इन समस्याओंको ज्यों-की-त्यों परमात्माको सौंप देना चाहिये। अन्तमें इससे आन्तरिक संचित शक्तिकी समझ उत्पन्न होगी। यहाँतक कि वह बाह्य कार्योंके प्रति भी इसीसे व्यवहार करने लगेगा। उसे सम्पूर्ण मनसे परमात्माकी शक्तिपर आस्था और उसके अगोचर कार्योंके परिणामपर अटूट विश्वास हो जायगा। उसे विषयोंके चिन्तनसे बचना चाहिये। खतरेकी सूचनासे उसकी वर्तमान भयावहता और विकरालताकी प्रतीतिमें बैठना नहीं चाहिये, अपितु उन सबको पूरी तरह स्वीकार कर निश्चिन्त हो जाना चाहिये; क्योंकि जैसे एक अकेली 'स्विच' निमिषमात्रमें सारे नगरको आलोकित कर देती है, उसी प्रकार पूर्ण आत्मसमर्पण और उत्सर्ग असीम कृपाको प्रकट करेगा और ऐसा होनेपर वह परमात्मा सचमुच वहाँ उपस्थित होगा, जिसकी एक स्वाभाविक अनुभूति होगी।

(अनुवादक—श्रीशेषमणि पाण्डेय)

शरणागतवत्सलता

दैन्यमूर्ति जो, प्रभुकी कृपा अहैतुक पर कर दृढ़ विश्वास।
सहज शरण्य चरण-दर्शनका मनमें भर उमंग-उल्लास ॥
जिसने डाल दिया अपनेको, आ, चरणोंमें बिना प्रयास।
सहज सत्य बेशर्त लुट पड़ा बनकर पद-रज-कणका दास ॥
शरणागतवत्सल प्रभुने पूछा न जरा भी पिछला हाल।
धर्म-जाति-दुष्कर्म आदिका किया न सहज कृपावश ख्याल ॥
विमल बनाकर, उठा, वरद कर रख मस्तक, कर दिया निहाल।
मुनिवाञ्छित दे दिया, नित्य दुर्लभ सेवाधिकार तत्काल ॥

आत्मसिद्धि

(लेखक—स्वामीजी श्रीसत्यभक्तजी)

जीवनको नाटक समझनेसे जिस प्रकार कर्तव्यतत्परता आती है, अथवा वह सुखी रहनेकी कलामें निष्णात होता है, उसी तरह आत्माको नित्य और इस जीवनको अनित्य या अपूर्ण समझनेसे सुखी रहनेकी कला आती है। जगत्कल्याणमें आत्मकल्याण है। इसलिये जगत्-कल्याणके साधनोंको उसे पूरा पालना चाहिये। परंतु स्वार्थके कारण मनुष्य उन नियमोंका भंग करता है। यह सोचता है कि अगर मैं जीवनभर दुखी रहा तो दूसरोंके कल्याणसे पैदा होनेवाला सुख मुझे कब मिलेगा! उसके इस भ्रमको मिटानेके लिये उसे यह जानना जरूरी है कि आत्मा नित्य है। वर्तमान जीवन-सरीखे असंख्य जीवन आत्माके अनन्त जीवनके सामने किसी गिनतीमें नहीं हैं; इसलिये इस जीवनका बलिदान करके भी सुखके उपायोंका पालन किया जाय तो हम टोटेमें न रहेंगे।

जिस प्रकार जब हमें रेलगाड़ीमें एकाध स्टेशनकी यात्रा करनी होती है, तब हम बैठनेकी सुविधाके लिये दूसरोंको असुविधा नहीं देते या कम-से-कम देते हैं। इसी प्रकार जब हमें जीवनकी क्षुद्रता (अल्पकालीनता) का पता लग जाता है और भविष्यके महान् जीवनपर हमारी दृष्टि पहुँचती है, तब इस जीवनके लिये पाप करनेका विचार नहीं होता।

भविष्य-जीवनकी आशा हमें इस बातका संतोष देती है कि इस जन्मके कार्योंका फल हमें अगले जन्ममें मिल सकेगा, इसलिये हमें अपना कर्तव्य करना चाहिये। कर्म निष्फल न जायगा। अगर इस जन्ममें उसका फल न मिला तो अगले जन्ममें मिलेगा। भविष्य जीवनकी आशा मृत्युके भयको दूर कर देती है और जिसने मृत्युके भयको जीत लिया, वह कर्तव्यमार्गमें पीछे नहीं हटता।

आत्माकी नित्यतासे हम परको स्वकीय समझने लगते हैं; इसलिये हमारी राग-द्वेषकी वासनाएँ कम हो जाती हैं। हम जगत्के कल्याणमें वृद्धि करने लगते हैं और हानि करना छोड़ देते हैं। विश्व-प्रेमकी भावना खूब बढ़ती है। उस समय हमारे विचार इस प्रकार होने लगते हैं—

आज मैं भारतीय हूँ। मरनेके बाद यूरोपीय हो सकता हूँ। फिर यूरोपीयोंसे द्वेष क्यों करूँ? अथवा आज मैं अंग्रेज हूँ। मरनेके बाद भारतीय हो सकता हूँ। फिर भारतको गुलामीमें जकड़कर क्यों रक्खूँ!

आज मैं हिंदू हूँ। मरकर मुसल्मान होना पड़ा तो आज मुसल्मानोंसे द्वेष क्यों करूँ? अथवा आज मैं मुसल्मान हूँ। मरकर हिंदू होना पड़ा तो हिंदुओंसे झगड़ा मोल क्यों लूँ!

आज मैं पुरुष हूँ। कल (मृत्युके बाद) अगर स्त्री होना पड़ा तो स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता क्यों छीनूँ? अथवा आज मैं विधुर हूँ। मरकर विधवा होना पड़ा तो विधुरोंके अधिकार विधवाओंको भी क्यों न प्राप्त करने दूँ?

आज मैं मनुष्य हूँ। कल अगर पशु होना पड़ा तो उन्हें वृथा क्यों सताऊँ?

आज मैं ब्राह्मण हूँ, कल शूद्र होना पड़ा तो शूद्रोंको परेशान क्यों करूँ?

आज राजा हूँ, कल प्रजा होना पड़ा तो अत्याचार क्यों करूँ? आज जमींदार हूँ, कल किसान होना पड़ा तो उन्हें क्यों सताऊँ?

इस तरहकी भावनाओंसे वर्गीय (सामुदायिक) तथा वैयक्तिक (एकसे होनेवाले) अत्याचारोंका नाश होता है। वह सोचता है कि दुनियाँमें दूसरे वर्गोंके साथ मैं जितनी भलाई करूँगा, वह सब मेरे काम आयगी। इसलिये दूसरेके साथ भलाई करना दूसरेके ऊपर अहसान नहीं है; किंतु भविष्यमें अपनी रक्षाका उपाय है। इस तरह जगत्की भलाई और अपनी भलाई एक हो जाती है। यह दृढ़ निश्चयके साथ आत्माको नित्य माननेका फल है। इसलिये सम्यग्दृष्टि (सच्ची समझवाला) आत्माको नित्य मानता है।

प्रश्न—सम्यग्दृष्टि जीव अप्रामाणिक बातोंपर विश्वास नहीं करता। इसलिये जबतक आत्मा एक नित्य वस्तु सिद्ध न हो जाय, तबतक वह आत्मापर विश्वास कैसे करेगा?

परलोकका कोई निश्चित रूप भी तो सिद्ध नहीं है, जिससे परलोककी आशा की जाय !

उत्तर—आत्माके विषयमें अनेक बातें कही जा सकती हैं। कुछ बातें यहाँ कही जाती हैं—

(क) अनुभव सब प्रमाणोंमें श्रेष्ठ प्रमाण है। शरीरमें सुख-दुःखका अनुभव नहीं होता। मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ—इत्यादि अनुभव शरीरसे अलग होता है, इसलिये आत्मा शरीरसे भिन्न है।

(ख) दो वस्तुओंका भेद उनके गुणधर्मके भेदसे ही सिद्ध होता है। आजकल वैज्ञानिक लोग बानवे (९२) तत्त्व (Elements) मानते हैं। एक तत्त्व दूसरे रूपमें परिवर्तित नहीं हो सकता। एक तत्त्वसे दूसरे तत्त्वका भेद उसके पृथक् गुणधर्मसे ही मालूम होता है। इन तत्त्वोंमें ऐसा कौन-सा तत्त्व है जिसमें चेतन पाया जाता हो ? अगर कोई ऐसा तत्त्व नहीं है तो आत्माको उन सबसे एक भिन्न पदार्थ मानना पड़ेगा।

प्रश्न—यद्यपि किसी एक तत्त्वमें चेतन नहीं है, फिर भी अनेक तत्त्वोंकी मिलावटसे चेतन पैदा होता है—जैसे कि शराबकी एक-एक वस्तुमें मादकता नहीं होती, किंतु उन सबके मिश्रणसे मादकता पैदा हो जाती है।

उत्तर—मादकता कोई नयी वस्तु नहीं है। प्रत्येक खाद्यपदार्थमें वह मादकता पायी जाती है। रोटी वगैरहमें भी मादकता होती है। इसी कारण भोजनसे निद्रा, आलस्य आदि उत्पन्न होते हैं। जिन वस्तुओंसे शराब बनती है, उनमें भी मादकता है। उनके मिश्रणसे वह अधिक प्रकट होती है। वास्तवमें यह कोई नयी जातिकी शक्ति नहीं है जो पैदा होती है। इतना ही नहीं; किंतु मादकता कोई स्वतन्त्र शक्ति ही नहीं है। जितनी वस्तुएँ हम खाते-पीते हैं, उनका रंग, रस, स्पर्श आदिका कुछ-न-कुछ प्रभाव हमारे शरीरपर पड़ता है। रंगके प्रभावको क्या आप रंगसे जुदा गुण मानेंगे ? इसी प्रकार रसका प्रभाव क्या रससे पृथक् गुण है ? यदि नहीं, तो खाद्यपदार्थके रंग, रस, गन्ध, स्पर्श आदिका प्रभाव इन गुणोंसे अलग नहीं है। यही प्रभाव मादकता है। जब यह थोड़ी मात्रामें होता है, तब हम इसका वेदन नहीं करते। जब जरा अधिक होता है, तब इसे निद्रा, तन्द्रा, आलस्य आदि शब्दोंसे कहते हैं। जब इससे भी अधिक होता है, तब मादकता कहलाता है। इससे मालूम हुआ कि मादकता कोई गुण नहीं है, किंतु रस-स्पर्शादि भौतिक गुणोंका शरीरके ऊपर पड़नेवाला प्रभाव है। हम दुनियाँमें सैकड़ों चित्र-विचित्र कार्य देखते हैं; परंतु वे सब रूप-रस-गन्ध आदि गुणोंके परिणमन मात्र हैं। किसी जगह नये गुणकी कल्पना हम तभी कर सकते हैं, जब कि उसमें माने गये गुणोंसे वह कार्य न हो सकता हो। मादक वस्तुमें मानी हुई मादकता आनेपर कोई ऐसी विशेषता पैदा नहीं होती जो उसके पूर्वगुणोंका परिणमन न कहा जा सके।

सच बात तो यह है कि स्कन्ध (अणुपिण्ड) में कोई ऐसी शक्ति नहीं पैदा हो सकती, जो अणुओं (Atoms) में न पायी जाती हो। उदाहरणके लिये हम एक रेलके इंजिनको लेते हैं। वह सैकड़ों डब्बोंको खींचनेकी शक्ति रखता है। अकेले लोहेमें या अग्निमें या पानीमें इतनी शक्ति नहीं है। इसलिये इंजिनमें यह नयी शक्ति कहलायी। अब हमें देखना चाहिये कि यह नयी शक्ति क्या है ? कैसे पैदा हुई है ? अणुओंकी अपेक्षा क्या इंजिनमें नया गुण पैदा हुआ है ? विचारनेसे मालूम होता है कि नहीं—अग्निमें गरमी है, गरमीके निमित्तसे प्रत्येक पुद्गल (Matter) के अणुओंका बन्धन शिथिल होता है, इसलिये वे दूर-दूर होते हैं अर्थात् स्थूल पदार्थ फैलता है। पानी, वाष्पीय तरल पदार्थ होनेसे जल्दी और ज्यादा फैलता है। अगर वाष्प (भाफ) को रोकनेकी कोशिश की जायगी तो वह धक्का देगी; धक्का खानेसे रोकनेवालेमें गति पैदा होगी। इस तरह गरमीसे गति पैदा होगी। इंजिनोंमें भी इसी प्रकार गति पैदा होती है। यहाँ उष्णता और गतिमें कार्यकारण भाव है। इन दोको छोड़कर इंजिनमें और क्या है ? और ये दोनों ही गुण अणुओंमें पाये जाते हैं। अब कौन कह सकता है कि इंजिनमें कोई नया गुण पैदा हुआ है ? कहनेका मतलब यह है कि चाहे मदिराका उदाहरण लें, चाहे किसी यन्त्रका, उसमें हमें कोई ऐसा नया गुण न मिलेगा जो अणुओंमें न पाया जाता हो। अगर कोई नया गुण मिल भी जाय तो हमें उसकी स्थिति उस अणुपिण्डमें नहीं, किंतु अणुमें माननी चाहिये। विज्ञानका यह सिद्धान्त है कि शक्ति (Energy) न तो नयी पैदा होती है, न उसका विनाश

होता है। इसलिये मदिरामें या किसी यन्त्रमें कोई नयी शक्ति नहीं मानी जा सकती—वह शक्तियोंका रूपान्तर मात्र है।

अब हमें यह देखना चाहिये कि चेतन किस शक्तिका रूपान्तर है। पुद्गल (Matter) में जितने गुण उपलब्ध होते हैं, उनमें कोई भी गुण ऐसा नहीं है जिसके रूपान्तरको चेतन कहा जा सके। स्मरण रखना चाहिये कि एक गुणका रूपान्तर कभी दूसरे गुण-रूपमें नहीं होता। काले रंगका नीला रंग हो जायगा परंतु रंगका रंग ही होगा, रस (स्वाद) नहीं। इसी प्रकार रसका रूपान्तर रस, गन्धका रूपान्तर गन्ध, स्पर्शका रूपान्तर स्पर्श, आकारका रूपान्तर आकार आदि होंगे। रसका, गन्धका, स्पर्शका, रूपका, आकारका रूपान्तर ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिये मानना चाहिये कि चेतन या ज्ञान एक नया गुण है—वह किसी अन्य (रूपादि) गुणका रूपान्तर नहीं है, इसलिये वह पैदा नहीं हो सकता, नष्ट नहीं हो सकता; क्योंकि शक्तिका उत्पादन और विनाश नहीं होता।

प्रश्न—जब हमारे शरीरको किसी एक चीजकी ठोकर लगती है, तब त्वचा (चमड़ी) के पासके स्नायुओं (नसों) में कम्पन होता है। शरीरके प्रत्येक भागके स्नायुओंका सम्बन्ध मस्तिष्कके साथ है। इसलिये त्वचाके पासके प्रत्येक कम्पनका प्रभाव मस्तिष्कपर पड़ता है जिससे हमें वेदन होता है। मस्तिष्कके ऊपर पड़नेवाला यह प्रभाव ही चेतन है। इसलिये यह अलग गुण नहीं माना जा सकता।

उत्तर—स्नायुओंकी प्रक्रिया ठीक है; परंतु इससे चेतनका पृथक् अस्तित्व (मौजूदगी) नष्ट नहीं होता। स्नायुओंसे मस्तिष्कमें कम्पन हो सकता है, उसके आकारमें सूक्ष्म परिवर्तन हो सकता है; परंतु आकारका सूक्ष्म परिवर्तन या कम्पन चेतन नहीं है। यदि कम्पनका नाम चेतन हो, तब तो सभी पदार्थ चैतन्यशाली कहलायेंगे। कम्पनसे चेतन हुआ, यह एक बात है और कम्पन चेतन है, यह दूसरी बात है। स्नायुओंकी प्रक्रियासे कम्पनसे चेतन पैदा हुआ, कहा जा सकता है, किंतु कम्पनको हम चेतन नहीं कह सकते। कम्पन और चेतनमें कार्यकारणभाव कहा जा सकता है, परंतु वे दोनों अभिन्न नहीं कहे जा सकते।

प्रश्न—कार्य और कारणमें बिल्कुल अभेद भले ही न माना जाय। किंतु कारणका रूपान्तर ही कार्य होता है, इसलिये चेतन आदि कार्यको कम्पन आदि कारणोंका ही रूपान्तर कहना चाहिये।

उत्तर—कार्य, प्रत्येक कारणका रूपान्तर नहीं होता; किंतु सिर्फ उपादान*कारणका रूपान्तर होता है। घड़ा बनानेके लिये मिट्टी और कुम्हार दोनोंकी आवश्यकता है; किंतु घड़ा सिर्फ मिट्टीका रूपान्तर है, न कि कुम्हारका। इसी प्रकार स्नायुओंकी क्रियासे मस्तिष्कमें कम्पन होता है; मस्तिष्कके कम्पनसे चेतन पैदा होता है। जबकि चेतन कम्पन रूप नहीं है; तब कम्पन उसके लिये निमित्तकारण हुआ, इसलिये चैतन्य (जानना) उससे अलग वस्तु ही† रहा।

प्रश्न—जब स्नायुओंकी प्रक्रियासे हमें चेतन या वेदन उत्पन्न होता हुआ दिखलायी देता है, तब हम एक नयी वस्तु (गुण) की कल्पना क्यों करें?

उत्तर—प्रत्येक कार्यके लिये दो तरहके कारणोंकी आवश्यकता होती है—एक निमित्त और दूसरा उपादान। इनमेंसे किसी एकके बिना कार्य पैदा नहीं हो सकता। जो मिट्टी इस समय घड़ा बन रही है, वह इस समयसे पहिले घटरूप क्यों न हुई? इसके उत्तरमें हमें कहना पड़ेगा कि उसके लिये अन्य कारण नहीं मिले थे। जिन अन्य कारणोंके मिलनेसे मिट्टी घड़ा बन सकी वे ही घड़ेके निमित्तकारण हैं। यदि निमित्तकारणके बिना कार्य होता तो अमुक समयपर उसकी उत्पत्ति ही नहीं हो सकती थी। वह अनादि हो जाता।

उपादानकारण भी कार्यके लिये आवश्यक है। मिट्टी न हो तो कुम्हार कितना ही प्रयत्न करे, वह बिना किसी उपादान (Matter) के घड़ा नहीं बना सकता। उपादान-

* जो कारण स्वयं कार्यरूपमें परिणत होता है, उसे 'उपादान-कारण' कहते हैं; जैसे घड़ेके लिये मिट्टी उपादानकारण है। जो कारण कार्यरूपमें परिणत नहीं होता, उसे 'निमित्तकारण' कहते हैं, जैसे घड़ेके लिये कुम्हार-चक्र आदि। आवश्यक दोनों हैं।

† वस्तु शब्दका अर्थ यहाँ पुद्गल (Matter) नहीं है, किंतु अस्तित्ववाला कोई भी पदार्थ लिया जा सकता है। इसका अर्थ thing, something, any substance आदि करना चाहिये।

कारण न माना जाय तो असत्से सत् होने लगेगा; परंतु हम अनुभवसे जानते हैं कि जो वस्तु नहीं है, वह पैदा नहीं हो सकती। आधुनिक विज्ञानका भी यह मूल सिद्धान्त है। इस तरह कार्य छोटा हो या बड़ा—उसके लिये निमित्त और उपादान—इन दोनों कारणोंकी आवश्यकता होती है।

कभी-कभी निमित्तकारण अदृश्य रहता है; परंतु अदृश्य होनेसे उसका अभाव नहीं माना जाता। उदाहरणार्थ हम किसी अधपके आम या केलाको लाकर एक स्थानपर रख देते हैं; दो-तीन दिनमें वह बिना किसी प्रयत्नके अपने-आप पक जाता है। यहाँ स्पष्ट रूपमें हमें पकनेका निमित्त कारण नहीं मालूम होता; फिर भी अगर कुछ निमित्त नहीं है तो वह दो-तीन दिन बाद क्यों पका ? पहिले क्यों न पक गया ? इससे मालूम होता है कि दो-तीन दिनमें उसे बाहरकी कुछ सहायता जरूर मिली है और वह वातावरणकी गरमी आदि है। इसी प्रकार कभी-कभी उपादानकारण भी अदृश्य होता है। उदाहरणार्थ शीतऋतुकी रात्रिमें शीतका निमित्त पाकर वनस्पतिपर ओस पड़ जाती है। उन बिन्दुओंका उपादान पानी हमें दिखायी नहीं देता; फिर भी हम कल्पना करते हैं कि वायुमण्डलमें फैले सूक्ष्म जलकणोंसे ये ओसके बिन्दु बने हैं। उपादान अदृश्य होनेसे उपादानका अभाव नहीं कहा जा सकता। कहनेका मतलब यह है कि निमित्तके साथ कार्यका अविनाभाव* सम्बन्ध सिद्ध हो जानेसे उपादानका अभाव नहीं कहा जा सकता। उपादान अगर अदृश्य हो तो भी उसे मानना पड़ता है।

हमें जो वेदन या अनुभव होता है उसका निमित्तकारण मस्तिष्क है; क्योंकि मस्तिष्कके मैटरमें जितने रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-आकार यदि गुणधर्म हैं; उनमेंसे चेतन किसीका भी विकार नहीं है; क्योंकि चेतन किसी रंग स्वाद आदिका नाम नहीं है। स्नायु-प्रक्रियासे हम वेदन या अनुभवके निमित्तकारणोंका परिज्ञान कर सकते हैं; किंतु उपादान-कारणका हमें पता नहीं लग सकता। लेकिन यह नहीं कह सकते कि वहाँ कोई उपादानकारण नहीं है; उपादानकारण है तो, परंतु वह अदृश्य है। अदृश्य होनेसे उसका अभाव नहीं माना जा सकता।

अनेक पदार्थ ऐसे हैं कि जिनके विषयमें हम ठीक-ठीक कुछ नहीं जानते; फिर भी उनके कार्यका अनुभव करते हैं। उदाहरणार्थ विद्युत् (बिजली) क्या है, इसका वैज्ञानिक जगत् कुछ भी उत्तर नहीं दे पाया है। फिर भी विद्युत्के कार्य प्रकाश, गतिका हमें परिज्ञान होता है और उससे हम काम भी लेते हैं। इसी प्रकार सुख-दुःख, संवेदन या अन्य पदार्थ परिज्ञानका उपादान आत्मा क्या है, इसके विषयमें हम कुछ न कह सकें, फिर भी वह एक जुदा पदार्थ है, यह हमें मानना पड़ता है। जब कि चेतन मस्तिष्कके गुणका रूपान्तर नहीं है (भले ही मस्तिष्कके गुण उसमें निमित्त होते हों) तो वह अन्य किसीका रूपान्तर है, यह मानना पड़ता है। जिसका रूपान्तर है, वही आत्मा है। वह हमारे लिये अदृश्य या अवक्तव्य भले ही हो, परंतु विद्युत् (बिजली) की तरह अनुमेय अवश्य है। दो पदार्थोंके संघर्षण या सम्मिश्रणसे विद्युत् पैदा होती है; परंतु हम संघर्षण और सम्मिश्रणको विद्युत् नहीं कह सकते। संघर्षण और सम्मिश्रण तो सिर्फ उसका निमित्तकारण हैं। इसी प्रकार स्नायु मस्तिष्क आदिकी क्रियाको हम चेतन नहीं कह सकते—वह तो सिर्फ उसका निमित्तकारण है।

प्रश्न—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, आकार, गति आदिका विकार चेतन नहीं है। वह एक पृथक् गुण है। यह बात ठीक है। परंतु जिस प्रकार पुद्गलमें रूपादि गुण हैं, उसी प्रकार उसमें एक चेतन गुण भी मान लिया जाय तो क्या आपत्ति है ? पुद्गलका प्रत्येक परमाणु चेतन है, किंतु जिस प्रकार परमाणु सूक्ष्म होनेसे उसके रूपादि गुण अदृश्य रहते हैं, उसी प्रकार परमाणुमें रहनेवाले चेतनकी मात्रा भी इतनी अल्प होती है कि हमें मालूम नहीं होती। किंतु जब वे परमाणु मस्तिष्क आदिके रूपमें बहुत-से एकत्रित हो जाते हैं, तब उनका चेतन विशाल रूपमें मालूम होने लगता है। इस प्रकार चेतन एक अलग गुण होनेपर भी वह पुद्गलसे भिन्न आत्मा द्रव्यको सिद्ध नहीं कर सकता।

उत्तर—गुणके भेदसे ही गुणीमें भेद होता है। इसलिये जबतक पुद्गल परमाणुओंमें चेतन साबित न हो जाय, तबतक चेतनवाले द्रव्यको एक नया द्रव्य ही मानना पड़ेगा। परमाणुको हम किसी भी इन्द्रियसे ग्रहण नहीं कर सकते। जो पिण्ड इन्द्रियोंसे ग्रहण होते हैं, उनको टुकड़े होते हम देखते हैं; इसलिये हम अनुमान करते हैं कि इनका सबसे छोटा टुकड़ा भी होगा। वही परमाणु है। कोई गुण नया नहीं पैदा होता, इसलिये स्कन्धों (परमाणु-पिण्ड) में जितने गुण पाये जाते हैं, उतने हम परमाणुओंमें भी मानते हैं।

* एकके होनेपर दूसरेका होना और न होनेपर न होना—इस नियमको 'अविनाभाव' कहते हैं।

मतलब यह है कि स्कन्धोंमें हम जितने गुण साबित कर सकते हैं, उससे एक गुण भी अधिक परमाणुमें नहीं कह सकते। जब परमाणु अदृश्य है, तब किसी गुणकी सत्ता पहिले स्कन्धोंमें ही साबित करनी चाहिये। परमाणुके गुणोंसे हम स्कन्धमें गुण साबित नहीं कर सकते, किंतु स्कन्धके गुणोंसे परमाणुमें गुण साबित किये जाते हैं। साधारण स्कन्धोंमें चेतन सिद्ध नहीं होता, इसलिये परमाणुओंमें चेतन कैसे माना जा सकता है? जिन स्कन्धों (शरीर-मस्तिष्क आदि) में चेतन मालूम होता है, उनके विषयमें तो यहाँ विवाद ही चल रहा है। वह चेतन उन स्कन्धोंका है अथवा उनसे विभिन्न किसी दूसरे द्रव्यका? मस्तिष्कमें चेतन तभी साबित हो सकता है, जब परमाणुओंमें चेतन साबित हो जाय और परमाणुओंमें चेतन तभी साबित हो सकता है जब कि मस्तिष्क आदिमें साबित हो जाय। जबतक यह अन्योन्याश्रयदोष दूर न हो जाय, तबतक 'गुणके भेदसे गुणीमें भेद होता है'—इस नियमके अनुसार चेतनवाले पदार्थको एक भिन्न द्रव्य ही मानना पड़ेगा।

प्रश्न–यदि दूसरे स्कन्धोंमें चेतन न होनेसे आप परमाणुमें चेतन न मानेंगे और परमाणुमें चेतन सिद्ध न होनेसे मस्तिष्क आदिमें चेतन न मानेंगे और इस तरह एक नये द्रव्यकी सिद्धि करेंगे तो मशीनोंमें भी एक नये द्रव्यकी कल्पना करनी पड़ेगी; क्योंकि एक यन्त्र (मशीन) से जो काम होता है, वह अन्य यन्त्रेतर स्कन्धसे नहीं होता; इसलिये यन्त्रके गुण परमाणुमें नहीं माने जा सकते। जो गुण परमाणुमें नहीं हैं, वे परमाणुओंसे बने हुए स्कन्ध (यन्त्र) में कहाँसे आ जायँगे? इसलिये हरएक मशीनमें एक नया द्रव्य मानना पड़ेगा।

उत्तर–पहले सिद्ध किया जा चुका है कि यन्त्रके जितने काम हैं, वे किसी नये गुणको सिद्ध नहीं करते, वे सब (गुण) परमाणुमें भी पाये जाते हैं। परमाणुको तो हम देख नहीं सकते, इसलिये यही कहना चाहिये कि वे गुण अन्य स्कन्धोंमें भी पाये जाते हैं। यन्त्रका काम गति, प्रकाश आदि है। वे सब गुण अन्य स्कन्धोंमें भी पाये जाते हैं। यह बात दूसरी है कि वे यन्त्रमें कुछ अधिक रूपमें पाये जायँ और साधारण स्कन्धमें साधारण रूपमें। परंतु वे पाये जायँगे दोनोंमें। इसलिये मशीनमें हमें किसी नये द्रव्यके माननेकी आवश्यकता नहीं है। मस्तिष्क आदिमें जो चेतन बतलाया जाता है, उसे हम उसका गुण तभी कह सकते हैं, जब वह अन्य स्कन्धोंमें भी साबित हो सके, भले ही वह थोड़े रूपमें हो। अन्य स्कन्धोंमें चेतन साबित होनेसे परमाणुओंमें चेतन माना जायगा जिसका विकसित रूप मस्तिष्क आदिमें मिलेगा।

लोहेके दो टुकड़ोंके घर्षण (घिसने-) से अगर विद्युत् पैदा होती है तो हम विद्युत्को लोहा नहीं कह सकते या पानीके घर्षणसे पैदा होती है तो हम विद्युत्को पानी नहीं कह सकते हैं। उसी प्रकार स्नायु-प्रक्रियासे पैदा होनेवाला (अभिव्यक्त) चेतन स्नायु या मस्तिष्क रूप नहीं माना जा सकता। इसका कारण ऊपर अच्छी तरह दिखा दिया गया है। फिर भी कुछ वक्तव्य शेष है।

यदि रूप-रस आदिके समान परमाणुओंमें चेतन माना जायगा तो सर्वशरीरव्यापी एक अनुभव न होगा। बहुत-से परमाणु मिल करके एक पिण्डरूप भले ही हो जायँ, परंतु एक परमाणुका रूप दूसरे परमाणुका नहीं बन सकता, न सब परमाणुओंका रूप एक बन सकता है। प्रत्येक परमाणुके गुण जुदे-जुदे हैं और वे सर्वदा जुदे ही रहते हैं। ऐसी अवस्थामें शरीरके प्रत्येक अवयवका या परमाणुका चेतन जुदा-जुदा होगा। किंतु क्रोध, मान, माया, लोभ, हर्ष, शोक, सुख, दुःख आदि आत्माकी जितनी वृत्तियाँ हैं वे शरीरके प्रत्येक परमाणुकी जुदी-जुदी नहीं हैं—सर्वशरीरमें एक ही वृत्ति होती है। इसलिये सिद्ध होता है कि ये वृत्तियाँ परमाणुओंकी नहीं हैं किंतु सर्वशरीरमें व्यापक किसी अन्य वस्तुकी हैं, जो कि सर्वशरीरमें व्यापक और अखण्ड है।

प्रश्न–सर्वशरीरमें जो चेतनका अनुभव मालूम होता है, वह भ्रम है। चेतनका अनुभव तो सिर्फ मस्तिष्कमें होता है। किंतु मस्तिष्कसे सम्बन्ध रखनेवाला नाड़ीजाल सब शरीरमें फैला हुआ है, इसलिये सब शरीरमें चेतन मालूम होता है।

उत्तर–मस्तिष्क भी एक परमाणुका बना हुआ नहीं है। वह भी अगणित परमाणुओंका पिण्ड है; इसलिये मस्तिष्कका भी एक चेतन नहीं कहा जा सकता। किंतु मस्तिष्कमें जितने परमाणु हैं, एक समयमें उतने ही क्रोध, मान आदि भाव होंगे। परंतु ऐसा नहीं होता, इसलिये अन्तमें जाकर सबमें व्यापक एक अखण्ड तत्त्व मानना पड़ता है।

प्रश्न–अनेक परमाणु मिलकर जब बँध जाते हैं, तब उनके गुण एकरूप मालूम होते हैं। जैसे मिश्रीकी एक डलीका स्वाद एक मालूम होता है, यद्यपि डलीके प्रत्येक परमाणुका

स्वाद जुदा-जुदा है। इसी प्रकार मस्तिष्कके या शरीरके प्रत्येक परमाणुका चेतन तो जुदा-जुदा है; किंतु सब परमाणुओंके पारस्परिक बन्धके कारण वह एक रूप मालूम होता है।

उत्तर—स्कन्धोंमें गुणोंका प्रतिभास एक रूप होने लगता है, यह बात मिथ्या है। एक ही स्कन्धमें अनेक रंग-रस आदि पाये जाते हैं। एक ही आम किसी अंशमें हरा और किसी अंशमें पीला होता है, ऊपर मीठा और गोईके पास खट्टा होता है। जिन स्कन्धोंमें हमें अंश-अंशमें विशेषता नहीं मालूम होती है, वहाँ भी सदृशता होती है, एकता नहीं। मिश्रीकी डलीका एक अंश दूसरे अंशके समान है, एक नहीं। मस्तिष्कके परमाणु अगर एक-सरीखे हो गये हैं तो उनका चेतन एक सरीखा होगा, एक नहीं। परंतु एक सरीखा भी हम तब कहें, जब वहाँ बहुत-से चेतन हों। समानता बहुतमें होती है, एकमें नहीं। खैर, इस विषयमें एक और महत्त्वपूर्ण बात कही जा सकती है।

दूसरे पदार्थके ज्ञानमें हमें अनेकमें एकका भ्रम हो सकता है; क्योंकि दूसरे पदार्थका ज्ञान हमें इन्द्रियोंके द्वारा करना पड़ता है और इन्द्रियोंकी तराजू इतनी स्थूल तराजू है कि प्रत्येक परमाणुकी तौल उसमें नहीं हो सकती। परंतु स्वानुभवमें यह बात नहीं है। स्वानुभव चेतनका निर्विवाद स्वरूप है। जहाँ चेतन अभिव्यक्त (प्रकट) होता है, वहाँ-पर वस्तुका ज्ञान हो चाहे न हो, परंतु अपना ज्ञान (अनुभव) तो होता ही है। इसलिये मस्तिष्क या शरीरके प्रत्येक परमाणुको अपना अनुभव होगा। दोका स्वानुभव कभी एक नहीं हो सकता। यदि मस्तिष्कका प्रत्येक परमाणु अपना-अपना अनुभव करता है तो समग्र शरीर या समग्र मस्तिष्ककी जो एक वृत्ति पायी जाती है, वह किसकी है? वह अखण्ड वृत्ति एक परमाणुकी तो कही नहीं जा सकती, अन्यथा बाकी परमाणु निरर्थक पड़ जायँगे और सब मिलकर एक स्वानुभव कर नहीं सकते; क्योंकि चेतनको प्रत्येक परमाणुका स्वतन्त्र गुण कहा जा सकता है—वह संयोगसे पैदा होनेवाला कार्य नहीं है, यह बात पहले सिद्ध की जा चुकी है। इस तरह चेतन एक स्वतन्त्र गुण है और उसका गुणी भी स्वतन्त्र है। उसीको आत्मा, जीव आदि शब्दोंसे कहते हैं।

शंका—आपकी युक्तियोंसे चेतन एक स्वतन्त्र पदार्थ या तत्त्व सिद्ध हो जाता है। फिर भी एक आश्चर्य बना रहता है। जब चेतन एक स्वतन्त्र पदार्थ है तो वह भौतिक सम्मिश्रणोंके अधीन क्यों है? किसी चीजमें कोई दूसरी चीज मिलानेसे कीड़े पड़ जाते हैं, गोबर और विशिष्ट मूत्रके सम्बन्धसे तुरंत बिच्छू पैदा होते हैं। रजवीर्यके यथायोग्य सम्मिश्रणसे तुरंत प्राणका संचार होता है। तो क्या असंख्य जीव फालतू फिरते रहते हैं कि जहाँ किसीने कुछ निमित्त मिलाया कि तुरंत घुस गये? जीव तो अपने शरीरमें रहते हैं। अगर किसीने जीवोत्पत्तिके निमित्त मिलाये तो क्या वहाँ पैदा होनेके लिये अन्य शरीरस्थ जीव मर करके दौड़ आयेंगे? यदि नहीं, तो भौतिक निमित्त मिलनेसे ही जीव कहाँसे आ जाते हैं? एक तरफ तो जीव भौतिक सिद्ध नहीं होता, दूसरी तरफ भौतिक विकारोंके साथ उसका इतना अविनाभाव सम्बन्ध मालूम होता है कि वह आश्चर्यजनक पहेली बन जाता है।

समाधान—जीव एक आश्चर्यजनक पहेली अवश्य है, परंतु इतना निश्चित है कि वह भौतिक पदार्थोंसे एक जुदा ही तत्त्व है। विद्युत्-सरीखी भौतिक वस्तु क्या है, अगर हम आजतक यह बात नहीं जान पाये तो आत्मा तो विद्युत्से सूक्ष्म और विचित्र है; इसलिये उसके आवागमनके नियम अगर अनिश्चित भी रहें—हम इस समस्याको हल न कर पावें—तो भी जीवके पृथक् अस्तित्वको धक्का नहीं लगता। जीवके विषयमें जो बात अज्ञेय है, उसकी खोज करते रहना चाहिये, न कि उसके अनुभव-युक्तिसे सिद्ध पृथक् अस्तित्वको नष्ट कर देना चाहिये। दूसरी बात यह है कि उपर्युक्त शंकाओंका थोड़ा-बहुत समाधान मिलता है। पानीकी एक बूँदमें अगणित जीव रहते हैं। जिन चीजोंके मिश्रणसे अनेक जीव पैदा होते हैं, उनमें भी असंख्य जीव रहते हैं। अगणित जीव हर समय मरते हैं और पैदा होते हैं और सर्वत्र जन्म-मरण होता रहता है। इसलिये छोटी-छोटी योनियोंमें दूसरे जीव आवें या न आवें, उसके लिये वहीं जीव मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त, जीव तुरंत पैदा होते हैं, यह बात ठीक नहीं है। भौतिक सम्मिश्रणके कुछ समय बाद जीव आते हैं। मनुष्य-योनिमें किसीके मतसे सात दिनमें और किसीके मतसे कुछ महीनों बाद जीव आता है। इस लम्बे कालमें तो दूसरे शरीरमें स्थित उच्चश्रेणीके भी बहुत-से जीव मरते हैं। इसके अतिरिक्त नीच श्रेणीका जीव मरकर उच्चश्रेणीमें जा सकता है। इस तरह जीवके आवागमनकी समस्या सामान्य दृष्टिसे हल हो ही जाती है। बाकीके लिये हमें खोज करना चाहिये। उपर्युक्त युक्तियोंसे इतना निश्चित है कि जीव भौतिक तत्त्वोंसे एक जुदा तत्त्व है।

परमार्थकी पगडंडियाँ

भगवत्कृपा सब समय अनुकूल स्वरूपमें ही नहीं आती, कभी-कभी बड़े भारी प्रतिकूल, अत्यन्त भयावह रूपका नकाब डाले आती है। परंतु वस्तुतः वह होती है—बहुत ही अनूठी, सदाके लिये निहाल कर देनेवाली। यह स्वाभाविक बात है, अटल नियम है। इसमें कभी परिवर्तन नहीं होता। भगवान् कभी असुन्दर और अमङ्गल करते ही नहीं; फिर जो उनपर निर्भर करके उनका भजन करते हैं, उनके लिये तो असुन्दर और अमङ्गल शब्द कोषमेंसे ही निकल जाते हैं।

× × ×

'प्रभु जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं।' यह समझकर बहुत प्रसन्न मन और प्रसन्न-वदन रहना चाहिये। परमानन्दरूप परमात्माके अटल राज्यमें उदासी कैसी? विषाद और चिन्ताका तो मूलोच्छेद ही कर डालना चाहिये। आनन्दके अथाह सागरमें दूसरेको स्थान ही कहाँ है? मस्त रहना चाहिये, झूमते रहना चाहिये। निरन्तर खिलखिलाकर हँसना चाहिये मौजकी मस्तीमें। स्वयं आनन्दमें मग्न रहकर दूसरोंको भी उस आनन्दमें लगाइये।

× × ×

यदि साधारण तौरपर सुखपूर्वक घरका खर्च चलनेलायक संग्रह हो और जितना खर्च लगता है, उतनी आमदनीका जरिया हो तो ज्यादा काम बिल्कुल नहीं बढ़ाकर अपना समय, यदि बचे तो लोक-सेवा, भगवत्सेवा आदिमें लगाना चाहिये। मैं न तो तामसिक आलस्य प्रमादका पक्षपाती हूँ और न भजनके बहाने 'काय-क्लेशभयात्' झंझटके डरसे किये जानेवाले राजसिक त्यागका ही समर्थन करता हूँ। जीवनको कर्ममय बनाये रखना ही प्रमादसे बचनेका साधन है, परंतु कर्म अवश्य ही ऐसे होने चाहिये जो शुभ हों, जो परमात्माकी ओर ले जानेवाले हों। परमात्माको भुला देनेवाले न हों, परमात्माके मार्गसे भ्रष्ट कर देनेवाले न हों।

× × ×

भगवान्‌का आश्रय समस्त शक्तियोंका आधार है। भगवान्‌के आश्रयीको पाप-ताप संताप नहीं दे सकते। उसके सारे दोष भगवान्‌का आश्रय ग्रहण करते ही नष्ट हो जाते हैं। रामके बलके समान और कोई बल नहीं है। आप रामके बलका आश्रय लेकर निर्भय होनेकी चेष्टा कीजिये।

× × ×

सर्वत्र भगवद्दर्शन और निरन्तर भगवच्चिन्तनपर विशेष ख्याल रखिये। जीवनको भगवान्‌के लिये भगवदाज्ञानुसार प्रवृत्तिमय बनाइये। जीवनका प्रत्येक क्षण भगवान्‌के काम आवे। जीवनके प्रत्येक श्वासपर उन्हींका एकान्त अधिकार हो। हमारा जीना-मरना, उठना-बैठना सब उन्हींके लिये हो—ऐसी चेष्टा कीजिये।

× × ×

जीवनमें परिवर्तन और क्षय प्रतिक्षण हो रहे हैं। जगत्‌के क्षणध्वंसी विषयोंसे नित्य-सुख कभी नहीं मिल सकता। जो कुछ मिलता है, वह भ्रममूलक, क्षणिक है और दुःखकी भूमिकामात्र है। श्रीभगवान्‌पर विश्वास करके उनपर सर्वप्रकारसे निर्भर हो जाना चाहिये। भगवत्कृपासे जो कुछ होता है, परम मङ्गल होता है। क्षणभङ्गुर शरीरका क्या पता कब नाश हो जाय। भगवान्‌की इच्छासे जो कुछ भी हो, उसीमें संतुष्ट होना मनुष्यका धर्म है। भगवान्‌का स्मरण कीजिये और इस नाट्यशालाके खेलोंको खेल समझकर देखिये। हम सभी कालके मुखमें हैं। पता नहीं, कल किसका क्या होगा?

× × ×

असलमें काम तो रामसे है। वह राम सब जगह रम रहा है; सर्वत्र हाजिर-नाजिर है। उसमें मन लगाना, उसको सर्वत्र देखना, उसीका स्मरण करना और उसीके शरण होना चाहिये। भगवान्‌की शरणागति मनुष्यको भव-समुद्रसे तारनेवाली और आत्यन्तिक मुक्ति प्रदान करनेवाली है।

× × ×

परमात्मा तो सर्वत्र समानभावसे व्याप्त है और उसकी दयाका समुद्र भी सर्वत्र सर्वदा लहरा रहा है। कहीं भी रहें, उससे अलग नहीं हो सकते। यह निश्चय रखिये।

× × ×

भगवान् सदा हम सबके अत्यन्त समीप हैं। उनसे अधिक समीप अन्य कोई भी नहीं है। उनका चिन्तन कीजिये। उन्हें सदा अपने समीप समझिये। अपनेको सदा उनकी परम पवित्र गोदमें सर्वथा सुरक्षित देखिये।

× × ×

जहाँतक बने सबसे प्रेम रखनेका प्रयत्न करना चाहिये तथा अपने द्वारा किसीका भी अनिष्ट-चिन्तन नहीं करना चाहिये, फिर भगवान् अपने लिये परिणाममें कल्याण ही करेंगे—इसमें जरा भी संदेह नहीं।

× × ×

भलाई किसी दूसरेकी ओर देखकर नहीं की जाती। अपनी भलाई ही भलाई करनेकी प्रेरणा करती है। हमें तो हमेशा सबकी भलाई ही सोचनी चाहिये। बुरा करनेवालेकी भलाई करना ही तो भले मानवकी भलाईका यथार्थ स्वरूप है।

× × ×

अपनेको तो अपना ही दोष ढूँढ़ना चाहिये। इसीमें अपना लाभ है। यदि हम भगवान्‌के सामने सच्चे और निर्दोष हैं, तो सारा जगत् चाहे हमें बुरा समझे, हमारी कोई हानि नहीं है और यदि जगत् हमारी बड़ी तारीफ करता है, पैर भी पूजता है, पर हम भीतरसे बुरे हैं—तो उस बाहरी मान-बड़ाईका कोई मूल्य नहीं है। जगत्‌के लोग तो दूसरोंकी उन्नति देखकर डाह भी करने लगते हैं। परंतु अपनी ओरसे यथासाध्य ऐसा ही प्रयत्न होना चाहिये कि जिसमें हमारा बर्ताव किसीके लिये भी अहितकर न हो।

× × ×

श्रीभगवान्‌की हम सभीपर अनन्त कृपा है। उनकी कृपापर विश्वास करके नित्य प्रसन्न रहना चाहिये। भगवान्‌की इतनी कृपा होते हुए भी अपनी दुर्दशाकी कल्पना करना एक प्रकारसे भूल ही है। सर्वसुहृद् भगवान्‌की कृपा निरन्तर अनन्त धाराओंमें हमलोगोंपर बरस रही है। उसका पद-पदपर पल-पलमें अनुभव करके आनन्दमग्न रहना चाहिये।

× × ×

अन्तर्व्यथा कोई ऐसी स्थिति नहीं है जो मिट नहीं सकती। उसके दो उपाय हैं—या तो आत्मशक्ति-पर विश्वास करके बदलेमें ऐसा निश्चय कीजिये कि 'मेरे अंदर व्यथा है ही नहीं। मैं सर्वथा, सर्वदा निश्चिन्त, प्रफुल्ल, आनन्दमय और परम प्रसन्न हूँ।' अथवा भगवान्‌की नित्य सहज मङ्गलकारिणी कृपा-शक्तिपर विश्वास करके ऐसा निश्चय कर लीजिये कि 'उनकी कृपासे मेरी व्यथा सदाके लिये विलीन, विनष्ट हो गयी है।'

इस प्रकारका आपका निश्चय जितना ही दृढ़ होता जायगा, उतनी ही आपकी अन्तर्व्यथा नष्ट होती जायगी और पूरा निश्चय होते ही वह मर जायगी।

× × ×

समस्त इच्छाओंका समर्पण आनन्दपूर्वक श्रीभगवान्के चरणोंमें ही करना चाहिये। किसी अन्यको न तो पूर्ण समर्पण किया ही जा सकता है और न उसमें वैसा लाभ ही है। समर्पणका भाव मनुष्यमें आता है, परंतु सोच-समझकर भी कर नहीं पाता। जहाँतक अनुकूलता होती है, वहाँतक तो समर्पण-सा प्रतीत होता है; परंतु प्रतिकूलता आते ही चित्तमें क्षोभ हो उठता है। इसलिये बस, इस युगमें एकमात्र भगवान्का नाम-जप ही सबके लिये सरल अवलम्ब है।

श्रीभगवान्का नाम लेते रहिये और उनकी अहैतुकी कृपापर विश्वास कीजिये—ये दोनों परम साधन हैं। थोड़ेमें ही सारी बात बतला दी है। यही आपके लिये भी सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला अनुष्ठान है।

× × ×

श्रीभगवान्पर विश्वास बढ़ाना चाहिये। भगवान्पर विश्वास दृढ़ हो जानेके बाद चित्तसे अस्थिरता तथा व्याकुलता सदाके लिये मिट जायगी। जितना-जितना विश्वास बढ़ेगा, उतना-उतना ही भगवान्में निवास होगा, भगवान्की गोद प्राप्त होगी। भगवान्की गोद प्राप्त कर लेना परम प्राप्ति है। अतएव—

बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे। जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे॥

इन वचनोंपर विश्वास करके श्रीभगवान्पर विश्वास बढ़ाना चाहिये।

× × ×

भगवान्पर विश्वास रखकर उनका नित्य स्मरण करनेका प्रयत्न करना चाहिये। विश्वासमें कमी नहीं आनी चाहिये। यह विश्वास रखना और बढ़ना चाहिये कि भगवान्की स्मृति भगवत्कृपासे होती है। यह मानो भगवान्का निमन्त्रण है। जब उन्होंने निमन्त्रित कर लिया है और स्मरणरूपी पत्तल भी दे दी है तो परोसेंगे भी जरूर। एक भला आदमी भी निमन्त्रित व्यक्तिको पत्तल दे देनेपर परोसता ही है, फिर भगवान् हमें कैसे भूखे रख सकते हैं। हाँ, हम पत्तल फेंककर कहीं जरा-सी देरमें ही घबराकर वापस न लौट जायँ। लौटने भी वे सहज नहीं देंगे, परंतु अपने भी सावधान तो रहना ही चाहिये।

× × ×

घर त्यागकर निकल जाने अथवा अन्न-जलका त्याग करनेसे भगवान्के दर्शन हो जायँ, ऐसा कोई नियम नहीं है। श्रीभगवान्की कृपासे घरमें रहते और अन्न-जल ग्रहण करते हुए भी भगवान्के दर्शन हो सकते हैं और घर छोड़कर अन्न-जल त्यागनेपर भी शायद नहीं होते। भगवद्दर्शनमें प्रधान कारण भगवद्दर्शनकी अनन्य और अति उत्कट इच्छा है। उस अनन्य इच्छामें तन-मनकी सुधि न रहनेसे अन्न-जलका त्याग अपने-आप हो जाय तो बहुत अच्छा है। परंतु जान-बूझकर हठपूर्वक अन्न-जल-त्यागकी क्रियासे या किसीके मर जानेके भयसे भगवान्को दर्शन देने पड़ें, ऐसी कोई बात समझमें नहीं आती। असलमें तो भगवान्के दर्शन किसको, कब और किस साधनसे या नियमसे होते हैं, इस बातको एकमात्र भगवान् ही जानते हैं। भगवद्दर्शनके अनेक साधन और विभिन्न हेतु हैं, परंतु इतना कहा जा सकता है कि अनन्य तथा तीव्रतम लालसा हुए बिना भगवद्दर्शन दुर्लभ है। जब भगवान्से बिना मिले हमसे नहीं रहा जायगा, तब भगवान् भी हमसे बिना मिले नहीं रह सकेंगे। उनका प्रण ही है—'जो उनको जिस प्रकारसे भजता है वे भी उसको वैसे ही भजते हैं।' यदि हमारा मन उनके बिना छटपटायेगा तो वे भी मिलनेको आतुर होंगे ही।

× × ×

यों तो इस शरीरके लिये सभीको निराशा होनी चाहिये। आशा तो दुराशा मात्र है। शरीर अवश्य ही एक दिन छूटेगा, दो दिन आगे या पीछे। अतएव जबतक शरीर स्वस्थ है और इन्द्रियाँ शक्तिमान् हैं,

तभीतक भगवान्‌का भजन भलीभाँति करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। उनकी कृपा तो सूर्यके प्रकाशकी भाँति सभीपर समान है। ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, भगवान् जिसके सुहृद् न हों। वे किसी स्वार्थी, पक्षपाती, एकदेशीय, अल्पशक्ति राजाके समान नहीं हैं, जो किसीपर दया करे और किसीपर नहीं। तथापि उनकी इस दयाका अनुभव भी उनकी दयासे ही होता है। आप उनकी उस दयापर विश्वास और निर्भर कीजिये। दयापर निर्भर करना ही दयाके अनुभव करनेका एक मुख्य साधन है। यह विश्वास कीजिये, दृढ़ विश्वास कीजिये कि 'मुझपर भगवान्‌की अपार, अखण्ड, अनन्त दया है। उस दयामयका दिव्य हाथ निरन्तर मेरे सिरपर रहता है। मैं सर्वथा और सर्वदा उनके द्वारा सुरक्षित हूँ। मेरे समीप रोग, शोक, दुःख, विषाद, चिन्ता, उद्वेग, भय और ताप-पाप आ ही नहीं सकते।' ज्यों-ज्यों आपका विश्वास दृढ़ होगा, त्यों-त्यों आप उसका प्रकाश पायेंगे और अपनेको एक ऐसी स्थितिमें पायेंगे, जिसकी आपके मनमें अभी कल्पना भी नहीं है।

× × ×

भगवान्‌की अपरिमित दयापर विश्वास करके उनका स्मरण करते हुए निश्चिन्त रहना चाहिये। श्रीभगवान् मङ्गलमय हैं, उनका प्रत्येक विधान परम कल्याणसे पूर्ण होता है, ऐसा अनुभव करना चाहिये। श्रीभगवान्‌की कृपाको देख-देखकर निरन्तर प्रसन्न रहना चाहिये। चित्तमें विषाद-दुश्चिन्ताको नहीं आने देना चाहिये। नाना प्रकारकी स्फुरणाओंको भी दबाकर श्रीभगवान्‌की कृपाका चिन्तन करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

निवेदन

(रचयिता—प्रो० श्रीरामस्वरूपजी खरे, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

मेरा क्या रह गया बताओ, अपना सब कुछ सौंप दिया जब—
तेरा ही स्वर भर गीतोंमें, झूम-झूमकर गा ही दूँगा!

यह जग आकर्षणकी नगरी,
हर राही ठग-सा जाता है।
पा थोड़ी शीतल-सी छाया—
सपनोंमें भरमा जाता है॥

वशमें करना मानव-मनको बड़ा कठिन है, कृपा न जबतक—
वरद-हस्त यदि बना रहा तो, चरणोंमें घर पा ही लूँगा!

तन-मन-धन सब तुम्हें समर्पित,
कैसे करूँ पुण्य-आराधन!
छायी निशा, पंथ तम-पूरित,
करें अश्रु कैसे नीराजन!!

अहं जलाकर ज्योति जगायी तेरी दिव्य, हृदय-मन्दिरमें—
जीवन-संध्याके आनेतक, द्वार तुम्हारा पा ही लूँगा!

तत्त्वं वन्दे तदद्भुतम्

(लेखक—श्रीभालचन्द्रजी दीक्षित, एम्० ए०, व्याकरणाचार्य)

'मैं' की इकाईसे ही समस्त कर्म, चिन्तन एवं स्थितियाँ व्याप्त हैं। इस इकाईके बिना किसी स्फुरणाका सम्भव ही नहीं है। इस इकाईका प्राकट्य भी पूर्णतया मनुष्य-शरीरमें ही हो पाता है, जिसमें यह इकाई अन्तःकरणके चार (मन—अभिरुचि प्रधान, बुद्धि—विशिष्ट विषय प्रकाश प्रधान, चित्त—चिन्तन प्रधान तथा अहं—इकाई आरोप प्रधान) रूपोंमें विकास पाती है। इस विश्वप्रपञ्चमें जिन अगणित शक्तियोंका प्रदर्शन देख पड़ रहा है, उनमेंसे सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्रबल यह इकाई शक्ति है। इसीकी एक अद्भुत विशेषता है—तादात्म्य, अभेदारोप या अन्योन्याध्यास। जिसके द्वारा यह इकाई प्रकृत्यन्तर्गत छोटी-बड़ी सभी वस्तु, व्यक्ति, अवस्था, परिस्थितियोंके साथ अभेदारोप कर सकती है। जिसके साथ यह इकाई अभेदारोप कर लेती है, वही उस इकाईका स्वरूप हो जाता है। फलस्वरूप उस वस्तु, व्यक्ति, अवस्था, परिस्थितिके गुणावगुण भी उस समयके लिये उसी इकाईके हो-से जाते हैं।

इसी प्रकार एक अन्य अद्भुत विशेषता है—ज्ञात-अज्ञात होनेकी, अर्थात् इकाई एक साथ ही ज्ञात भी है और अज्ञात भी है। सभी आबालवृद्ध, रोगी, नीरोगी, मूर्छित, मुमूर्षु, जाग्रत्, स्वप्निल, सुषुप्त रूप इकाइयाँ अपने प्रति सामान्यतया सचेतन, किंतु विशेषतया अचेतन रहती हैं। इसी विशेषतया अचेतन होनेके कारण वर्तमान व्यामोहका सृजन होता रहता है एवं सामान्यतया सचेतन होनेके कारण भावी विकासका द्वार खुला रहता है और अन्ततक सदा-सर्वदा अखण्ड रूपसे विद्यमान रहनेकी अनुभूति होती है। इकाईमें सामान्य ज्ञानका अस्तित्व सदा है और विशिष्टरूपसे अज्ञानका अस्तित्व भी केवलीभावके पूर्व है ही। सामान्य ज्ञान ही विशिष्ट अज्ञानका आधार है और विशिष्ट अज्ञान ही व्यामोहका कारण है। केवलीभावके अतिरिक्त अन्य अवस्थाओं—जैसे मृत्यु, मूर्छा, सुषुप्तिमें भी ज्ञातता तथा अज्ञातता—दोनों ही हैं—यह बात निःसंदिग्ध है। सामान्य ज्ञातताके बिना विशिष्ट अज्ञान निराश्रय है और निर्विषय भी है। सामान्य ज्ञानके बिना विशिष्ट अज्ञान 'वदतोव्याघात' है, अर्थात् कथनके अयोग्य है, कहा नहीं जा सकता। प्रथमके बिना द्वितीयका 'निरूपण' सम्भव नहीं। तथा एक बात और भी बड़ी महत्त्वपूर्ण है। वह यह कि सामान्य ज्ञानका 'निरूपण' भी विशिष्ट अज्ञानके बिना सम्भव नहीं। यहाँ विवेचनीय है कि सामान्य ज्ञानका निरूपण असम्भव कहा गया है न कि सामान्य ज्ञान। चन्द्राकी चाँदनी भी किसी आधारपर ही प्रतिबिम्बित होती है। श्रीमद्भगवद्गीतामें बड़ी दृढ़तापूर्वक कहा गया है—'अभावका भाव नहीं है और भावका अभाव नहीं है'—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

—यह निर्णय-वाक्य है। संदेहकी कोई सम्भावना नहीं रक्खी गयी। पारमार्थिक सत्पदार्थ बिल्कुल ही सुरक्षित है। वही सर्वका आधार है।

मानव अनादिकालसे आत्म-अनात्म, स्वार्थ-परमार्थ एवं जगत्-जगदाधारका विवेचन करता आया है। बुद्धिके विवेचन एवं वाणी-प्रयोग भी मध्यकालीन ही हैं। इनका प्रारम्भ होकर अन्त होता है। प्रारम्भ और अन्तके मध्य मन और वाणीके विलास हैं; किंतु अन्त और पुनः प्रारम्भका मध्य भी होता है। यही सामान्य ज्ञानकी विविक्त अमिश्रित स्थिति है। सत्, चित्, आनन्द—इन शब्दोंसे परम तत्त्वका निरूपण होता आया है। सत्य, ज्ञान, शुद्ध, मुक्त आदि पदोंका प्रयोग भी उसके लिये होता है, तथापि इन्हीं शब्दोंका प्रयोग आकाश, बुद्धिवृत्ति आदिके लिये भी होता है। किंतु आकाश एवं बुद्धिवृत्ति आदिके सत्यतादि धर्म अन्य प्रकारके हैं। वे सत्यतादि धर्म परम तत्त्वके सत्यतादि धर्माभासोंसे भिन्न हैं। पहले जिस विशिष्ट अज्ञानकी चर्चा की जा चुकी है, वही अभेदारोपद्वारा आकाश, बुद्धिवृत्ति आदिकी सत्यता, ज्ञानता, आनन्दता, शुद्धता, मुक्तता आदिका कारण है।

निषेध अर्थात् नास्ति (नहीं है) यह बुद्धिवृत्ति साक्षिभास्य है, अर्थात् किसी साक्षीके बिना अभावमात्रका निरूपण एवं अस्तित्व भी सम्भव नहीं है। अभावके होनेके लिये जिस वस्तुका अभाव है, उसका और अभावका भी ज्ञान अनिवार्य है। केवल अभावकी स्वतन्त्र सत्ता सम्भव नहीं, अर्थात् विश्व-प्रपञ्चका भाव अर्थात् अस्तित्व तो साक्षीकी अपेक्षा रखता ही है, उसका अभाव भी साक्षिभास्य ही है। अर्थात् सत् स्वरूप परम तत्त्व ही विश्वके भाव और अभावका प्रकाशक है। इस प्रकार सत्की स्वतन्त्र सत्ता भी प्रमाणित हो जाती है अर्थात् स्वतन्त्ररूपसे भाव ही

रह सकता है, अभाव नहीं । सत् स्वप्रकाश है । इसके अस्तित्वके लिये अन्य प्रकाशककी आवश्यकता नहीं है; सत्के निरूपणके लिये असत्की आवश्यकता भले ही हो। इसी सत्का सामान्य ज्ञानके साथ अभेद है; क्योंकि सामान्य ज्ञानमें क्रियाकारक मात्र या ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय आदि त्रिपुटियाँ नहीं हैं । सामान्य ज्ञान निर्गुण है । उस निर्गुणको बुद्धयारूढ़ करनेके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें गुण-विवेचन प्रस्तुत किया गया है और 'निस्त्रैगुण्यो भव' कहा गया है ।

मेरी समझमें सत्के विस्तारके लिये मूर्त ढाँचे चाहिये । मूर्त मृत्पिण्डादिके विस्तारके लिये निराकार देश चाहिये । अर्थात् विकास-विस्तारके लिये निराकारको साकार और साकारको निराकार अवलम्बन चाहिये । विश्व इन्द्रियमात्र है और इन्द्रियाँ मनमात्र । मनसे यदि इसकी मननी शक्ति हटा दी जाय तो मन आत्ममात्र, सन्मात्र अर्थात् है 'मात्र ही' रह जाता है, उससे भिन्न नहीं । इस प्रकार विश्व भी आत्ममात्र ही सिद्ध होता है । यहाँपर एक बात बहुत ही ध्यान देने योग्य है कि लौकिक न्याय एवं तर्क वहाँ लागू नहीं होता । कल्पित विश्वकी उत्पत्ति आदि भी कल्पित ही है । यह कल्पना विश्वके सारभूत तत्त्वके जाननेमें सहायक है । कल्पना भी दृष्टानुसारी होती है । जो कुछ मिला हुआ है, उसका उल्लङ्घन साधनकालमें असम्भव और अनपेक्षित भी है । उसे साधन-सामग्रीके द्वारा ही पार होना होगा । बल्कि इसीके लिये साधन-सामग्री मिली हुई है । यही उसका सदुपयोग है । अन्य उद्देश्यमें साधन-सामग्रीको लगाना दुरुपयोग है । वज्रवत् दृढ़ होनेपर भी कल्पना कल्पना ही है । उसके लिये किया गया विचार, ज्ञान, प्रभुमय दर्शन ही उसकी आँचसे बचनेके लिये अथवा उसे निःसार कर देनेके लिये छू-मन्तर-सा है । उसके आगे विश्व एवं विश्वके धर्म टिक नहीं सकते और उनके बिना वे मिट भी नहीं सकते ।

अब आइये कल्पनाका रसास्वाद लिया जाय । जो घनीभूत तत्त्व है, वहाँ अन्यकी गुंजाइश कहाँ ? वह सत्-घन, चित्-घन और आनन्द-घन है । बल्कि वहाँ तो सत्, चित् और आनन्द भी घनीभूत एकमेक हैं । अतः गुंजाइश होनेके लिये सर्वप्रथम आवश्यकता हुई—'एकोऽहम् बहु स्याम् ।'—के साथ अवकाशस्वरूप आकाश (Space) की । सृष्टिकी कल्पनाके साथ-ही-साथ कालतत्त्व या (Time factor) आप-ही-आप आ जाता है । इस प्रकार देश और कालकी सर्वप्रथम अभिव्यक्ति होती है । तदुपरान्त—'स ऐक्षत'—की गतिकी संधि आती है और गतिस्वरूप वायुका उद्भव होता है । गतिकी और स्पष्ट अभिव्यक्तिके लिये रूपका आधार चाहिये । अतः रूप तत्त्व, जड प्रकाश या तेजस् आया । तेजस्के लिये भी आकार चाहिये तथा पहले तरलता; फिर उससे भी अपेक्षाकृत ठोस टिकाऊ आधारके लिये काठिन्य शक्तियाँ क्रमशः आयीं और क्रमशः अप् और भू तत्त्व अभिव्यक्त हुए । भौतिक प्रपञ्चके लिये ये पाँच भूत आवश्यक एवं अनिवार्य माध्यममात्र हैं, जिनसे सबका सब पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड व्याप्त है । इस प्रपञ्चकी स्थूल, सूक्ष्म, कारण—ये तीन अवस्थाएँ हैं । इनमेंसे स्थूलावस्थामें पूर्ण अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है । इन सबमें सबसे महत्त्व-पूर्ण है—मानवमें अन्तःकरण नामक इकाईकी शक्ति । यह इकाईकी शक्ति ही अपने उद्गमको खोजती हुई अपने मूलसे अभिन्न हो जाती है । इसका वर्णन साहित्यिक, दार्शनिक या भावात्मक भाषामें कैसा ही किया जाय । शान्ति, मुक्ति, भक्ति आदि इन दृष्टिकोणों एवं वर्णन-शैलियोंके ही प्रकार-भेदमात्र हैं ।

विश्वको एक अन्य रूपमें भी वर्गीकृत किया गया है । प्रकाश, क्रिया, स्थितिके अतिरिक्त भी यहाँ कुछ भी नहीं है । तदनुसार ही प्रकाशशील सत्त्व, क्रियाशील रजस् एवं स्थितिशील तमस्—इन गुणोंकी अवतारणा की गयी है । उस परम तत्त्वकी सच्चिदानन्दरूपता ही इस विश्व-प्रपञ्चकी प्रकाश, क्रिया, स्थितिशीलताके रूपमें विकसित हुई है । इन प्रकाश, क्रिया, स्थितिके बीच-बीच भासमान असत्ता, जाड्य एवं दुःखकी अनुभूतियाँ सच्चिदानन्दरूपताकी पुनः प्रतिष्ठाके प्रकाशस्तम्भमात्र है । किंतु इन गुणोंका विवेचन निर्गुणकी निष्पत्तिमें सहायक हो सकता है । अतएव श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीमद्भागवत महापुराणमें वस्तु, व्यक्ति, अवस्था, परिस्थिति आदिमें सत्, रजस्, तमस्का विवेचन एवं तीनों गुणोंसे अतीतका दिग्दर्शन कराया गया है, जो वहींपर द्रष्टव्य है ।

मानवताकी विजय

(लेखक—श्रीनिरञ्जनदासजी धीर)

हब्शी दासोंको मुक्त करनेके प्रश्नपर एक शताब्दीसे अधिक समय पूर्व अमेरिकाके संयुक्तराज्यके उत्तर तथा दक्षिणमें घोर युद्ध छिड़ा था, जो तीन वर्षसे कुछ मास अधिकतक चला। विर्जिनिया प्रान्तकी शैननडोहा घाटीमें, जो दक्षिण क्षेत्रमें थी, एक 'बैटी वाँ मैत्रेय' नामकी महिला रहती थी। तीन वर्षके युद्धके फलस्वरूप यह सारी घाटी उजाड़ जंगल बन गयी थी। सेनाओंसे प्राण बचाकर भागे हुए दुर्वृत्त लोगों तथा डाकुओंकी अराजकताके कारण बड़ा ही आतङ्क फैल रहा था। लुटने-पिटनेके भयसे वहाँके निवासी अपने घर-खेत छोड़कर अन्यत्र भाग गये थे। दोनों सेनाएँ नित्यप्रति आपसमें जूझती थीं और रक्तपात होता था।

श्रीमती बैटीका एक भाई युद्धमें वीरगति पा चुका था। दूसरा भाई सैनिक बंदी बना हुआ था और उसका पतिदेव, जो दक्षिणकी सेनामें एक अफसर था, उत्तरक्षेत्रके युद्धबंदियोंके किसी कैम्पमें दुःख, रोग तथा भूखके कष्ट सह रहा था। इधर वह अकेली अपने घरमें रह रही थी। इसके पास एक मध्य-आयुका हब्शी पुरुष तथा उसकी पत्नी दासके रूपमें थे, जो बड़े प्रेमसे इसकी सेवा करते थे। वह दिनका कुछ समय दक्षिणी सेनाके लिये अपनी अन्य सहेली-महिलाओंसे मिलकर कपड़े सीने-बुननेकी सेवामें बिताती थी। दिन तो किसी भाँति कट जाता था; किंतु बीस वर्षीय युवतीके लिये अकेलेमें रात्रिका अन्त ही नहीं होता था।

सितम्बरका महीना था कि उत्तरीय सेनाके सैनिक अस्पतालकी एक टोली इसके घरसे आध मील दूर एक खेतमें बने गृहके समीप ठहरी और घायलोंकी घोड़ा-गाड़ीमेंसे एक घायलके स्ट्रेचरको उतारकर क्षेत्रके गृहमें ले जाया गया। महिलाके हब्शी दासने यह दूरसे देखा। उस घायलके साथ एक अन्य व्यक्ति भी था। सैनिक अस्पतालकी वह टोली आगे चली गयी।

वह घायल लेफ्टिनेन्ट बेडल था, जो तीन दिन पूर्व एक शैल (फटनेवाले गोले) के इसके समीप फटनेसे बुरी तरह घायल हो गया था। इस गोलेके एक लोहेके टुकड़ेने इसका दायाँ हाथ क्षत-विक्षत कर दिया था और दूसरेने उसकी बायीं टाँगकी ऐसी बुरी दशा कर दी थी कि जाँघके नीचेकी सारी टाँग काट देनी पड़ी।

जब घायलोंको युद्धक्षेत्रसे निकालकर अन्य अस्पतालोंमें स्थानान्तरण किया जा रहा था, उस समय देखा गया कि बेडलकी दशा ऐसी थी कि अधिक दूर ले जानेसे उसकी मृत्यु हो जानेका भय था। इसलिये डाक्टरोंने उसको उसी क्षेत्रगृहमें रख देनेका निश्चय किया और वहाँ रहनेवाली महिलाको धन देकर बेडलको गृहके सबसे ऊपरके कक्षमें गुप्तरूपसे रखनेके लिये राजी कर लिया और एक अस्पताल-के अर्दलीको घायलकी सेवाके लिये छोड़ दिया गया। घायलने डाक्टरके जानेसे पहले एक पत्र अपनी धर्मपत्नीको लिखवाया और अपनी बंदूक अपने पास रखवा ली। बेडल एक बलवान् तथा वीर योद्धा था। उसने निश्चय किया था कि यदि दक्षिणी सेनावाले उसे बंदी बनाने आये और उसको होश रहा तो वह एक-दोको मारकर मृत्युको प्राप्त होगा।

इस क्षेत्रगृहके असली मालिक तो भाग गये थे। जो स्त्री इसमें रह रही थी वह दुष्टा थी और खाली घरमें व्यभिचारके लिये टिकी थी। उसने तथा अर्दलीने दो दिन सुरापान किया, निर्दयी होकर भोगविलासमें मग्न रहे और उन्होंने ऊपर टिके घायलको उसके कक्षमें एक बार भी, उसके चीख-पुकार करनेपर भी, जाकर नहीं देखा। जब उन्होंने देखा कि घायल तो मरता ही नहीं, वे दोनों तीसरे दिन उसे छोड़कर वहाँसे अन्यत्र चले गये।

हब्शी दासने उनके चले जानेपर उस क्षेत्रगृहमें वस्तु-स्थितिको समझकर सारी बातें श्रीमती बैटीको बतलायीं। वह उस क्षेत्रगृहमें गयी और ऊपरके कक्षमें जाकर घायल-को देखा। घायलको टट्टी-पेशाबमें लथपथ रक्तरञ्जित वर्दीमें बुरी तरह कराहते देखकर उसका हृदय मुँहको आ गया और वह नीचे आकर स्वच्छ वायुमें अपने वमनको रोक सकी!

साधारण व्यक्तिके लिये तो यह घायल उस वैरी सेना-का एक नायक था, जिसने उसके भाईको मार डाला था

और दूसरे भाई तथा हृदयेश्वर पतिको अज्ञात स्थानोंमें बंदी बनाकर कष्ट दे रही थी और इसलिये वह मृत्युका अधिकारी नहीं तो किसी सहायताके योग्य नहीं था; किंतु मानवता यह कहती थी कि एक दुखी घायल मनुष्य है, चाहे वह कोई भी हो, उसकी सेवा-सहायता न करना असुरों अथवा राक्षसोंको भले ही उचित लगे, एक सच्चे मानवके लिये ऐसा विचार महान् कलुषित तथा अशोभनीय है। फिर ऐसे कार्यके लिये चाहे कितना भी कष्ट तथा दण्ड सहना पड़े, उसे सहना ही उचित है।

बैटीने बेडलके शरीरको स्वच्छ किया, उसको जल पिलाया और उसके भयानक घावोंको धोया। दिनमें तीन बार वह उसके पास आती, जो कुछ भोजन-सामग्री उपलब्ध होती, वह उसको खिलाती। इसकी पवित्र सेवाने निश्चय ही बेडलके जीवन-की बुझती हुई दीप-ज्योतिको बचा लिया। जब बेडल-ने बताया कि उसकी पत्नी तथा बच्चे वरमोंटमें हैं, तो बैटी-के हृदयमें उस महिलाके लिये सहानुभूति तथा प्यारकी बाढ़ आ गयी और वह विचार करने लगी कि वे बेचारी भी अपने पतिकी रक्षाके लिये मेरी भाँति ही प्रभुसे प्रार्थना करती होंगी।

अक्टूबर मासमें उस प्रान्तमें ठंडक हो जाती है। बैटी-ने सोचा कि बेडल यहाँ रहा तो निमोनियासे पीड़ित होकर मृत्युको प्राप्त हो जायगा; क्योंकि उस गृहको उष्ण रखनेका कोई प्रबन्ध नहीं हो सकता था। इसलिये वह रात्रिके अँधेरे-में उसको अपने दास तथा दासीकी सहायतासे उठाकर अपने घर ले आयी और रसोईके ऊपर एक परछत्तीपर उसका बिछौना लगा दिया, जिससे ठंडकसे रक्षा हो सके। कुछ तो हिलने-डुलनेसे घावोंको झटका लगा और कुछ ठंडक भी लग गयी, जिसका फल यह हुआ कि बेडलको तीव्र ज्वर हो गया और वह ऊल-जलूल बोलने लगा। इस परिस्थितिमें वह क्या करे। इसके लिये उसने प्रभुसे प्रार्थना की। उसने सोचा कि अपने परिवारके चिकित्सक डाक्टर ग्राहामकी, जो कि बड़े भले व्यक्ति थे, सहायता लेनी चाहिये। इसने उनको बुलाया और रोगीको दिखलाया तो उसने एक वैरी सैनिक-की चिकित्सा करनेपर तो आपत्ति नहीं की, यद्यपि यह भी एक अपराध था; किंतु उसने कहा कि 'जो ओषधि तथा उपकरण रोगीके लिये आवश्यक हैं, वे दक्षिणी क्षेत्रमें उपलब्ध नहीं हैं।' बैटीने कहा कि 'आप आवश्यक ओषधि तथा उपकरण लिख दें। मैं उत्तरीय सेनावालोंसे ले आनेका प्रयत्न करूँगी।' डाक्टरने समझाया कि 'बीस मीलपर उत्तरीय सेना-का मुख्य केन्द्र है। इस अराजकताके समय इतनी दूर एक युवतीका जाना बड़े जोखिमका काम है और फिर तुम्हारी बातको सत्य कौन मानेगा?' बैटी बोली कि मेरे सत्यकी पुष्टि-में मैं वह सरकारी कागज, जिसमें बेडलकी पदोन्नतिका आदेश है, ले जाऊँगी।'

दूसरे दिन प्रातःकाल ही बैटी अपने घोड़ागाड़ीमें बैठकर चल दी और सूर्य अस्त होनेसे पूर्व उत्तरीय सेनाके केन्द्रीय कार्यालयमें पहुँच गयी और वहाँके सेनाध्यक्ष-को अपने आनेका कारण बताया। सेनाध्यक्ष बोला कि लेफ्टिनेन्ट बेडल मर चुका है, ऐसी उसके पास छोड़े अर्दली-ने सूचना दी थी। बैटीने कहा कि 'अभी वह जीवित है और यदि ओषधि तथा उपकरण न मिले तो उसकी मृत्युकी सम्भावना अवश्य है।' सेनाध्यक्षने कहा कि 'तुम्हारा कथन सत्य है अथवा नहीं, इसकी जाँचके लिये मैं अपने किसी सैनिकका जीवन जोखिममें नहीं डालना चाहता। तुम एक वीराङ्गना हो जो अपने जीवनकी परवा न करके हमारे पास पहुँची हो। उसने अपने निजी सेवादारको आज्ञा दी कि इस महिलाको ओषधि और उपकरण अवश्य दे दिये जायँ। सेनाध्यक्षका धन्यवाद करके और सारा सामान लेकर बैटी लौट आयी। डाक्टर ग्राहाम उनके प्रयोगसे बेडलके जीवन-की रक्षा करनेमें सफल हो गये। उसके हब्शी दासने कटी टाँगके लिये एक बैसाखी बना दी, जिसकी सहायतासे वह चलने-फिरने लगा।

एक अपरिचित व्यक्तिके बैटीके घरमें रहनेके समाचार पड़ोसमें फैलने लगे और डाक्टर ग्राहामके कानमें भी पहुँचे। उसने बैटीसे कहा कि 'एक वैरी सेनाके नायकको आश्रय देना घोर अपराध है, इसलिये इसको अपने गृहसे दूर हटा देना नितान्त आवश्यक है।' बेडल भी यह बात समझता था और उसने एक पड़ोसी किसानको इस बातके लिये सहमत कर लिया था कि 'वह उसको अपनी गाड़ीद्वारा उत्तरीय सेनाके केन्द्रतक पहुँचा दे तो वह उसको उसके खच्चर, जो उत्तरीय सेनावाले ले गये थे, वापस दिलवा देगा।' उसने बैटीको भी अपने साथ चलनेके लिये स्वीकृति ले ली थी, जिससे वह उसके पतिदेवका पता लगानेका प्रयत्न कर सके। एक घाससे भरे लकड़ीके खोखेमें बेडलको लिटा दिया गया।

उसने अपनी बंदूक तथा बैसाखी अपने पास रखवा ली। दूसरे खच्चरके स्थानपर गाड़ीमें बैटीकी घोड़ी जोती गयी और पड़ोसी किसानने गाड़ी हाँक दी।

अभी एक घंटेकी बाट रहती थी कि झाड़ियोंसे निकलकर दो घुड़सवारोंने गाड़ीको रोक लिया। एकने पिस्तौल दिखाकर मालमत्ता रख देनेको कहा और दूसरा गाड़ी चलानेवाले किसानको पकड़कर ले जानेको उतारू हो गया। बैटीके हाथ-पाँव फूल गये कि अब क्या करूँ? इतनेमें दनसे गोली चली और पिस्तौलवाला डाकू धरतीपर लुढ़क गया। दूसरी गोलीसे किसानकी रक्षा हो गयी। बेडलने ही बंदूक चलायी थी। जब गाड़ी फौजी-पहरेपर रुकी तो एक बूढ़े किसान तथा शिथिल हो रही युवतीको आते देखकर पहरेवाले चकित हो गये और उनका आश्चर्य और भी चमत्कारसे पूर्ण हो गया, जब उन्होंने अपनी सेनाके एक अफसरको घासभरे खोखेसे निकलते देखा। जिस प्रसन्नतासे बेडलने अपनी सेनाके ध्वजको देखा और पट्टी बँधे हाथसे उसकी सलामी दी, वह नहीं भुलायी जा सकती। उसे सेनाध्यक्षके सम्मुख लाया गया और उसने बैटीकी मानवता तथा उसकी रक्षाके हेतु अपना जीवन न्यौछावर कर देनेकी तत्परताको सभीके सामने सराहा। किसानके खच्चर उसको वापस मिल गये और उन दोनोंको सैनिक रक्षाके साथ उनके घर पहुँचा दिया गया।

बेडलको राजधानी वाशिंगटनमें भेज दिया गया। वहाँ वह राज्यके युद्ध-सचिवसे मिला और बैटीकी अनुपम मानवता तथा सच्ची सेवाका वृत्तान्त सुनाया। उसने तत्काल ही राज्यकी ओरसे बैटीको धन्यवादका पत्र लिखा और उसके पतिदेव जेम्सको तत्काल बंदीमुक्त करनेकी आज्ञा दे दी। एक जेम्स ओहाओके बंदीगृहमें था, किंतु यह निश्चय नहीं हो सका कि वही बैटीका पति है। बेडलके इच्छानुसार बैटी तथा बेडलके लिये जहाँ वे चाहें जा सकें, ऐसे रेलके पास जारी कर दिये गये और जहाँ-जहाँ युद्धके बंदी रक्खे गये थे, वहाँ इनको हर प्रकारकी सहायता देनेके राजकीय आदेश दे दिये गये। बैटी और बेडल ओहाओ पहुँचे। सभी युद्धबंदी इनके समक्ष प्रस्तुत किये गये; किंतु वहाँ बैटीका पति नहीं था। एक अन्य बंदी-संस्थामें भी वह नहीं मिला। बैटीको भय लगने लगा कि कहीं उसके पतिकी मृत्यु न हो गयी हो; किंतु प्रभुका विधान ठीक ही होता है। मेरीलैंड प्रान्तके डेलावेर किलेके युद्धबंदियोंको जब एक लाइनमें इनको दिखानेके लिये खड़ा किया गया तो एक दुबला लंबा युवक लाइन छोड़कर बैटीके पास आया और उसने अपने बाहु बैटीके गलेमें डाल दिये। बैटीने भी उसको प्रेमसे आलिंगन किया। आनन्दातिरेकसे दोनोंके अश्रु बहने लगे। बेडल भी अपने अश्रु न रोक सका। बेडल इन दोनोंको अपने साथ अपने घर वरमोंट ले गया। तबसे दोनों परिवारोंमें ऐसी मित्रता प्रकट हुई, जो सहोदर भाइयोंमें भी नहीं होती। बोलो मानवताकी जय। मानवता अमर रहे।

('रीडर्स डाईजेस्ट'के एक लेखके आधारपर)

संतति या परिवार-नियोजनपर महात्मा गांधीजीके विचार

'संततिके जन्मको मर्यादित करनेकी आवश्यकताके बारेमें दो मत हो ही नहीं सकते। परंतु इसका एकमात्र उपाय है—'आत्मसंयम या ब्रह्मचर्य', जो कि युगोंसे हमें प्राप्त है। यह रामबाण और सर्वोपरि उपाय है और जो इसका सेवन करते हैं, उन्हें लाभ-ही-लाभ होता है। डाक्टर लोगोंको मानव-जातिपर बड़ा उपकार होगा, यदि वे संतति-नियमनके लिये कृत्रिम साधनोंकी तजवीज करनेके बजाय आत्मसंयमके साधन निर्माण करें।'

कृत्रिम साधनोंकी सलाह देना मानो बुराईका हौसला बढ़ाना है। उससे पुरुष और स्त्री—दोनों उच्छृङ्खल हो जाते हैं और इन कृत्रिम साधनोंको जो प्रतिष्ठा दी जा रही है, उससे संयमके ह्रासकी गति बढ़े बिना न रहेगी।'.....'कृत्रिम साधनोंके अवलम्बनका कुफल होगा 'नपुंसकता और क्षीणवीर्यता।' यह दवा रोगसे भी ज्यादा बदतर साबित हुए बिना न रहेगी। ('नवजीवन', १२-३-२५)

कर्मोंका फल

(लेखक—श्रीश्याममनोहरजी व्यास, एम्० एस-सी०, बी० एड्०)

कर्मोंका फल मनुष्यको अवश्य भोगना पड़ता है। इस लोकमें या परलोकमें कहीं भी!

कर्म ही मनुष्यके भाग्यका निर्माता है। कर्मकी गति गहन है। पूर्वजन्मके संचित कर्मोंका परिणाम मनुष्यको भोगना ही पड़ता है।

एक प्रेरणाप्रद पुराण-कथा है—

रत्नपुरीके चन्द्रदत्त वैश्यके आठ पुत्र थे। व्यापार करके वे अपने जीवनका निर्वाह करते थे। सुखी-सम्पन्न परिवार था।

पर महाबली कालकी गति कौन जाने! एक-एक करके आठों पुत्र रोगग्रस्त होकर कालके मुखमें समा गये। आठ पुत्र-वधुओंके भरी जवानीमें विधवा हो जानेपर भी वृद्ध वैश्यकी आँखोंमें आँसू नहीं आये। गीताके साम्य भावको धारणकर वह सब कुछ सहन करता रहा। एक प्रकारसे वह समत्व-योगी बन गया। गाँवके लोग उसके धैर्यकी प्रशंसा करते। कुछ लोग वज्र-हृदय कहकर उसका उपहास करते। पर सामान्य लोग उसे जीवन्मुक्त और विदेह मानते।

कुछ समय पश्चात् गाँवमें प्लेगकी आँधी आयी और वह उसके एकमात्र पौत्रको भी ले गयी। अब तो उसके धैर्यका बाँध टूट गया; उसने अपना सिर दीवारसे दे मारा।

उसी समय वीणाधारी नारद मुनि उधरसे निकले। वृद्धको दुखी देख वे उसके पास गये। उसे सान्त्वना देते हुए नारद मुनि बोले—'भाई! धैर्य रक्खो, रोनेसे क्या लाभ?' वृद्धने पीताम्बरधारी नारद मुनिको प्रणाम किया और कातर स्वरमें कहा—'स्वामिन्! धैर्यकी भी कोई सीमा है। एक-एक करके आठों पुत्र मृत्युके मुखमें समा गये। ले-देकर घरमें एक टिमटिमाता दीपक बचा था, उसे भी क्रूर काल ले गया। अब भी मुनिवर! आप मुझे धैर्य रखनेको कहते हैं! आप ही बताइये, अब मैं कैसे धैर्य रक्खूँ!' नारद मुनिको भय लगा कि कहीं यह आस्तिक व्यक्ति अधिक विपत्ति आनेपर नास्तिक न बन जाय। अतः वे बोले—'क्या तुम अपने पौत्रकी मृत्युसे सचमुच दुखी हो? वह तुम्हें पुनः दिखायी दे जाय तो क्या सुखी हो सकोगे?'

वृद्धने निर्निमेष नेत्रोंसे नारदकी ओर देखकर अपने हृदयकी वेदनाको आँखोंमें व्यक्त करके अपनी अभिलाषाको मौन भाषामें प्रकट कर दिया।

नारदने योगमायाका सहारा लिया। अन्तरिक्षमें पौत्रका सूक्ष्म शरीर दिखायी दिया। वृद्ध चन्द्रदत्त उसे देखकर प्रसन्नताके मारे पुलकित हो उठा। वह बोला—'अरे मेरे लाल! तू कहाँ चला गया था, अब शीघ्र मेरे पास आ।'

पौत्रकी दिव्यात्मा बोली—'अरे दुष्ट! तू मेरे शरीरको छूकर इसे अपवित्र न कर! पूर्वजन्ममें तूने और तेरे आठ पुत्रोंने जिन लोगोंको यन्त्रणाएँ पहुँचायी थीं, ऐश्वर्य और अधिकारके मदमें जिन्हें तूने मिट्टीमें मिला दिया था; वे ही निरीह प्राणी तेरे पुत्र और पौत्ररूपमें जन्मे थे। ये रुदन करती हुई तेरी आठों पुत्र-वधुएँ तेरे पूर्वजन्मके पुत्र हैं, जिन्होंने न जाने कितनी विधवाओंका सतीत्व हरण किया था।'

इतना कहकर स्वर्गीय आत्मा अन्तरिक्षमें विलीन हो गयी। वृद्धकी मोहनिद्रा दूर हो गयी।

नारद मुनि वीणापर गुनगुनाते हुए चले गये—

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'

कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है।

विधाताकी सृष्टिका यही नियम है।

पश्चिमके अन्धानुकरणके भयानक परिणाम

(लेखक—श्रीधर्मवीरजी)

चंडीगढ़ जानेके लिये लक्सरमें गाड़ी बदलनेकी आवश्यकता नहीं थी, परंतु इंजनका मुँह तो बदलना था । तो भी दिशा-परिवर्तनमें जरूरतसे ज्यादा समय लगा दिया गया । इसलिये मैंने रेलके बुक-स्टालके सामने अपनेको खड़ा पाया । अंग्रेजोकी पुस्तकें गायब थीं; हिंदीकी पुस्तकोंका आधिक्य था । यह तो अच्छी बात थी, परंतु पुस्तकोंके नाम पढ़े तो कुछ हैरानी-सी हुई । 'खूनी कातिल', 'कत्लमें किसका हाथ था ?,' 'लाल रक्त, लाल नारी', 'सीनेमें कटार', 'खूनी प्यार', 'कत्लकी रात,' 'खूनका प्यासा !' अरे यह क्या ? क्या पढ़नेवालोंको खूनके अतिरिक्त कुछ अच्छा ही नहीं लगता ? कत्ल, खून और प्यार ?

जो भी हो, इससे एक बात तो स्पष्ट हो जाती है; पढ़नेवाले कैसी सामग्री चाहते हैं । परंतु यह क्यों ? यह एक प्रकारसे पश्चिमकी अंधी नकलका परिणाम है । थोड़ी देरके लिये अमेरिकाके सर्वप्रिय उपन्यासोंको देखिये ।

'एक अठारह वर्षीय अमेरिकन लड़के डेविडने सात वर्षीय लड़कीको बर्बतापूर्ण ढंगसे कत्ल करके उसे पास ही एक गिरजाघरके तहखानेकी भट्ठीमें जला दिया ।' ऐसा मालूम देता है कि ये शब्द किसी जासूसी उपन्याससे लिये गये हों । परंतु यह दुर्भाग्य है कि यह जीवनकी एक सच्ची घटना है । फिर इस प्रकारकी घटनाएँ वहाँ आये दिन होती रहती हैं । इसके कई कारण हैं । इनमें सबसे बड़ा यह है:—पत्र-पत्रिकाओं, टेलिफोन, टेलिविजन और सिनेमाने कत्लके अनोखेपनको बहुत ही सर्वप्रिय बना दिया है । यही कारण है कि ऊपर लिखी गयी घटनाके सम्बन्धमें समाचारपत्रोंने लिखा कि डेविड तंत्रिका-तनावका प्रयोग करना चाहता था ।

'अँधेरेमें कत्ल', 'दस्तानापोश कातिल', 'गला घोंटनेवाला'—इस प्रकारके उपन्यास अमेरिकाके पुस्तक-विक्रेताओंकी दुकानोंपर एक प्रकारसे छाये हुए हैं । जब अमेरिकन नवयुवक प्रतिदिन सुबह-शाम जेम्स बांडको परदेपर देखते हैं कि वह दायें जेबमें पिस्तौल रक्खे बड़ी शानके साथ जीवन व्यतीत करता है, तब इसमें अचरजकी क्या बात है कि वे भी 'कत्लके अनोखेपन'का प्रयोग करना चाहते हैं । आजके नवयुवकको मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करनेकी आवश्यकता नहीं । इसके लिये सेक्सके मनोविज्ञानके आचार्य हैवलाक ऐलिन्सको दूसरे लोकसे बुलानेकी जरूरत है । यह तो साधारण बुद्धि भी जान सकती है कि ऐसा क्यों हो रहा है ।

अमेरिकामें इस समय विभिन्न विनाशकारी अपराध तेजीसे बढ़ रहे हैं । इसमें पैसेवालोंका हाथ भी है । १९६७ के पूर्वार्धके मुकाबलेपर १९६८ के पूर्वार्धमें अपराधोंकी संख्या इक्कीस प्रतिशत अधिक थी । जनवरीसे अक्टूबर १९६८ तकके कालखण्डमें इससे पहले वर्षके मुकाबलेपर न्यूयार्कमें लगभग ५४ प्रतिशत अधिक चोरियाँ हुईं । अमेरिकाके नगरोंमें बसनेवाले लोगोंको हर समय खटका लगा रहता है । सूर्य अस्त होनेके बाद वे अपने घरोंसे बाहर सड़कपर निकलने तथा अपरिचित लोगोंके साथ लिफ्टमें सवार होनेमें डरते हैं । उन्हें खतरा रहता है कि कहीं वे अपने फ्लैटमें ही कत्ल न कर दिये जायँ । इस बातका उल्लेख भी आवश्यक है कि १९६७में गम्भीर अपराधोंके लिये जो लोग गिरफ्तार किये गये, उनमें ४९ प्रतिशत नवयुवक और कम आयुके लड़के थे ।

अब यहाँपर प्रश्न होता है—ये लड़के और नवयुवक ऐसा क्यों करते हैं ? ये लोग जो जासूसी कहानियाँ पढ़ते और मार-धाड़की जो फिल्में देखते हैं, वे अपना प्रभाव इन मनचले नवयुवकोंके मस्तिष्कपर छोड़ जाती हैं । तब फुर्सतके समय ये नवयुवक तथा लड़के सोचने लगते हैं—'हम भी क्यों न चोरी करके या किसीका वध करके देखें ?' इस विषयमें उनको किसीसे मन्त्रणा करने या सलाह-मशविरा लेनेकी आवश्यकता नहीं होती ।

वधके सम्बन्धमें एक और बात उन्हें सहायता करती है । अमेरिका तथा यूरोपके बहुत-से देशोंमें पिस्तौल रखनेके लिये लाइसेंस लेनेकी आवश्यकता नहीं होती । फिर अच्छी पिस्तौल चालीस डालरसे कममें मिल जाती है । यह कहींसे भी खरीदी जा सकती है । यही क्यों ? वहाँ तो

टैंक-तोड़ बंदूकें भी बिना किसी रुकावटके मोल ली जा सकती हैं। ९९ डालर ५० सेंटमें यह शस्त्र जब, जहाँ चाहो, ले लो; कोई पूछेगा नहीं। एक बार शैतानका यह चरखा हाथमें आ गया कि मौका मिलते ही जिसपर चाहा हाथ साफ कर दिया।

अमेरिका स्वतन्त्र तो है, किंतु इस स्वतन्त्रताके साथ प्रायः उच्छृङ्खलता जुड़ जाती है और यह उच्छृङ्खलता अनर्थ या अनिष्ट ही नहीं, विनाशका कारण बनती है। एक तेरह वर्षीय लड़के जानने भद्दी-सी जासूसी कहानी पढ़ी और साथ ही टेलिविजनपर एक घटनाका मूर्त-स्वरूप देखा। बस, फिर क्या था, उसने भी अपने गाँवकी सात वर्षीय लड़की, एलिजाके सिरपर पत्थर दे मारा। उसके सिरके अंदरसे मेजा बाहर निकल आया। जानको पकड़कर पुलिस अपने साथ ले गयी। उसके माता-पिताको पता लगा तो वे बहुत चिन्तित हुए और इधर-उधर हाथ मारने लगे। न्यायालय-में उससे मैजिस्ट्रेटने प्रश्न किये। उससे पूछा गया—'तुमने एलिजाके सिरपर पत्थर क्यों मारा? क्या तुम यह नहीं जानते थे कि वह मर सकती है?' अपराधीने बड़ी लापरवाहीसे उत्तर दिया—'मैं यह जानना चाहता था कि पत्थरके लगने-पर वह क्या करेगी? यह तो मैं जानता था कि पत्थर लगनेसे वह मर जायगी। परंतु मैं उसे मरते देखना चाहता था।'

जब इस लड़केने यह जवाब दिया, तब उसके चेहरेसे यह बात न टपकती थी कि वह डर रहा है। उस समयतक उसे यह पता न था कि इस अपराधके कारण उसे फाँसी दी जा सकती है। लेकिन जरा उसके इस उत्तरपर विचार कीजिये कि 'मैं उसे मरते देखना चाहता था।' यहाँ एक बात और भी विचारणीय है। भारतमें हर हिंदू बच्चेको माता बचपनमें ही यह बता देती है कि 'किसी जीव या प्राणीको मारना पाप होता है, इसके फलस्वरूप हमें परमात्मा दण्ड देते हैं। यह पाप है, हमें पुण्यके कार्य करने चाहिये।' अब यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारे समाजके छोटे-से-छोटे सदस्यको आत्मा-परमात्मा, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्यकी कल्पना छुटपनमें ही हो जाती है। भले ही वह कल्पना पूर्ण या विज्ञान-शुद्ध न हो तो भी उसके अन्त-स्तलमें आत्मा-परमात्मा, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य स्थान बना लेते हैं और ये संस्कार जीवन-पर्यन्त बने रहते हैं, बल्कि मिटाये नहीं मिटते।

अमेरिकामें हर मिनटमें घोर अपराध होते हैं। हर ७३ मिनटके पश्चात् एक कत्ल होता है, हर १९ मिनट-पर किसी-न-किसी नारीका सतीत्व भंग किया जाता है, हर ३० सेकंडपर एक डाका डाला जाता है और हर २० सेकंडपर कहीं-न-कहीं चोरी होती है। इसका परिणाम क्या निकलता है! समझदार अमेरिकन इस जीवनसे प्रतिक्षण डरते रहते हैं। सेनेटके सदस्य एडवर्ड केनेडीने एक बात-की ओर संकेत भी किया है। पश्चिमी वर्जीनियाके मॉर्गन टाउनमें अवयस्कोंके सुधार-केन्द्रका उद्घाटन करते हुए उन्होंने कहा—'आज हमारे लिये सबसे बड़ा भय अपराधोंका है। यह हमें हर जगह, हर काममें चलते-फिरते, सोते-जागते आ दबोचता है।'

आज भारतके लोग पश्चिम, अर्थात् यूरोप और अमेरिकाका अन्धानुकरण कर रहे हैं। जो व्यक्ति पहले समाजके नेता थे, वही इस समय पथ-भ्रष्ट हो चुके हैं। स्वार्थ-के कारण स्वयं उन्हें समाजके हितकी कोई बात नजर नहीं आती। उनमेंसे अधिकतर अनीतिकी राहपर चल रहे हैं। एक समय पत्रकार उच्च कोटिके नेता होते थे। लोकमान्य तिलक, मोतीलाल घोष, चिन्तामणि, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द—इन सम्पादकोंको कोई खरीद नहीं सकता था। आज तो पत्रकारका ईमान भी चायकी प्यालीमें बह जाता है। स्कूल-कालेजोंके शिक्षक एक समय गुरु-तुल्य माने जाते थे। आज उन्हें भी कोई नहीं पूछता। ऐसी स्थितिमें यदि पश्चिमका अन्धानुकरण करनेवाले हमारे बालक-बालिकाएँ पथभ्रष्ट होती हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

क्रमके पत्र

(१)

सभी रूपों तथा स्थितियोंमें भगवान्‌को देखें

प्रिय महोदय,

सप्रेम हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला था। आपका स्वास्थ्य इधर ठीक नहीं रहता, सो यह तो शरीरका स्वरूप ही है। आप विद्वान् हैं, आपने शास्त्रोंका अध्ययन किया है, आप जानते हैं—जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि इस पाञ्चभौतिक शरीरके साथ लगी ही हुई है। जो बना है, वह नष्ट होगा ही—जो जन्मा है, वह मरेगा ही। मृत्युसे डरनेकी आवश्यकता नहीं। विचार करें तो जन्मकी अपेक्षा मृत्युमें कल्याणकी सम्भावना अधिक है और मृत्यु होते ही परमानन्द स्वरूपकी प्राप्ति सम्भव है। जन्म ग्रहण करनेमें तथा जन्म होनेपर शिशु-अवस्थामें अज्ञानतामें दुःख है, वह अज्ञान-जनित दुःख किसी प्रकार मिटाया नहीं जा सकता; पर 'मृत्यु'के समय यदि सावधानी रहे तो मृत्युकालमें सुख रहता है और मृत्यु होते ही 'परम सुख' मिल सकता है। 'जन्म' होनेपर जीवन बिगड़नेकी सम्भावना है, पर 'सुधरी मृत्यु' होनेपर अकल्याणकी कोई सम्भावना ही नहीं; क्योंकि फिर जन्म ही नहीं होता। सुधरी मृत्युका अर्थ है—मृत्युके समय हमारी ब्राह्मी स्थिति रहे या श्रीभगवान्‌की अनन्य अखण्ड स्मृति रहे। जहाँ भगवान्‌की अनन्य अखण्ड स्मृति है, वहाँ जगत्‌की सर्वथा विस्मृति है। ऐसी स्थितिमें मृत्यु सुखपूर्वक होती है और मृत्युके उपरान्त तुरंत ही मृत्युकालीन भगवत्स्मृतिके अनिवार्य फलस्वरूप भगवत्प्राप्ति हो जाती है; जीव कृतकृत्य हो जाता है।

मृत्यु कब आ जाय, इसका पता नहीं; अभी अगले ही क्षण मृत्यु हो सकती है। अतएव अभीसे भगवान्‌की अखण्ड स्मृतिका साधन करने लगना चाहिये। चाह सच्ची तथा तीव्र होगी और भगवत्कृपाका भरोसा होगा तो भगवान्‌की स्मृति अखण्ड हो जायगी। वही अनन्य हो जायगी। फिर मृत्यु चाहे जब आ जाय। आपके मनकी वृत्ति उसे भगवत्स्मृतिमें ही लगी मिलेगी। अतः वह मृत्यु बड़ी मङ्गलमयी बन जायगी, सारी भावी मृत्युओंको मारकर वह स्वयं ही मर जायगी। ऐसी भगवत्प्राप्ति करानेवाली मृत्यु ही 'सुधरी मृत्यु' है। इस प्रकार मृत्यु सुधरे, इसके प्रयत्नमें तुरंत लग जाना चाहिये।

आप बुद्धिमान् हैं, सब समझते हैं। इस जगत्-प्रपञ्चमें कहीं कुछ भी सार नहीं है। यह वास्तवमें है ही नहीं; सर्वथा असत् है। अज्ञानसे ही दिखायी दे रहा है और यदि कहीं अज्ञानकी सत्ता मान लेनेपर यह 'है' तो है—क्षणभङ्गुर, अनित्य, अपूर्ण, दुःखयोनि, दुःखालय। अतएव इससे विरक्त होकर भगवत्स्मृतिमें लग जाइये। चाहे इसे 'दुःखरूप' मानकर, चाहे सर्वथा 'असत्' मानकर।

यों तो सारी ही उनकी लीला है। भगवान्‌की लीला-में और लीलामय भगवान्‌में नित्य अभेद है; अतएव अस्वस्थता और मृत्युके रूपमें भी उन लीलामयकी स्वरूपा-भिन्न लीला ही हो रही है। यह समझकर इस अस्वस्थतामें भी उनके मङ्गल दर्शन कीजिये। यही आपके रोगकी परम औषधि है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

धर्मपत्नीके साथ सद्व्यवहार

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। सुनी हुई बात तो दूर, आँखसे देखनेपर भी उसका पूरा पता लगाये बिना किसीको दोषी मान लेना अनुचित है। फिर जब आपकी धर्मपत्नी अपनेको सर्वथा निर्दोष बतला रही हैं, तब तो उन्हें दोषी मानकर त्याग करनेका विचार भी करना बड़ा पाप है। आप ऐसा पाप कभी न करें। उन्हें सद्भाव दें, स्नेह दें, आदर दें और अपने सद्व्यवहारसे सुखी रक्खें—ईश्वर आपका भला करेंगे। शेष भगवत्कृपा।

(३)

भगवान्‌के मङ्गलविधानपर विश्वास करनेसे शान्ति मिलती है

सम्मान्य बहिन, सस्नेह हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपका दुःख यथार्थ है और यह मिटना भी चाहिये; पर पता नहीं, प्रारब्धके भोग कैसे हैं। आप अपने मनमें उनके प्रति सदा सद्भाव रखिये, उनकी मङ्गलकामना

कीजिये, जो करतीं ही हैं। भगवान्‌का विधान मानकर सहन कीजिये। आपका इस जगत्‌का सम्बन्ध आरोपित है। यहाँ तो स्वाँगके अनुसार अनासक्तभावसे खेल करना है। आप 'शरीर' तथा 'नाम' नहीं हैं। आत्मा हैं। आपका सम्बन्ध भगवान्‌से है। भगवान् आपको अपने धाममें सुख-निवास देनेके लिये इन दुःखोंके द्वारा तपाकर पवित्र कर रहे हैं। इन्हें दुःख न मानकर भगवान्‌का मङ्गलकारी मङ्गलविधान मानिये। भगवान् आपके नित्य सुहृद् हैं—वे कभी आपका अहित नहीं करते। जैसे सुयोग्य सर्जन रोगीके कल्याणके लिये उसके अङ्ग काटता (ऑपरेशन करता) है, वैसे ही इसे परम सुहृद् भगवान्‌का किया हुआ ऑपरेशन मानिये। भगवान्‌ने कहा है कि 'मेरी सुहृदतापर विश्वास करते ही, उसे जानते ही शान्ति मिल जाती है—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।

शेष भगवत्कृपा।

(४)

जगत् तथा भोगोंकी दुःखमयता

प्रिय भाई! सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला।··· के आकस्मिक देहावसानका समाचार पढ़कर एक बार तो मुझे भी बहुत दुःख हुआ। उसकी आदर्श गुणावलि मेरे स्मृति-देशमें मूर्तिमान् हो उठी। जब मुझे इतना दुःख हुआ, तब उसके घरवालोंको कितना दुःख हुआ होगा, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। पर यह दुःख वास्तवमें है मोहवश ही। यथार्थमें न तो यहाँ कोई कुछ भी हमारा है, न हमसे किसी भी प्राणि-पदार्थका नित्य सम्बन्ध है। यहाँका मिलन वैसा ही है—जैसा किसी रास्तेकी सरायमें या रेलगाड़ीके डिब्बेमें विभिन्न स्थानोंको जानेवाले मुसाफिरोंका मिलन। इसीसे हमारे भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

इत्थं परिमृशन् मुक्तो गृहेष्वतिथिवद् वसन्।
न गृहैरनुबध्येत निर्ममो निरहंकृतः॥
(श्रीमद्भागवत ११। १७। ५४)

'इस प्रकार सोचकर ममता और अहंकारका त्याग करके घरमें अतिथिकी तरह रहना चाहिये। उसे घर-गृहस्थीके फंदे बाँध नहीं सकते।'

संयोग-वियोग, जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, हर्ष-शोक, सम्पत्ति-विपत्ति—ये अनन्त द्वन्द्व ही संसारका स्वरूप है। ये कभी मिटनेके नहीं हैं। इनमें जबतक समता नहीं होगी, तबतक दुःख कभी नहीं मिटेगा। दूसरे शब्दोंमें संसारके समस्त प्राणि-पदार्थ अनित्य अपूर्ण होनेके कारण 'दुःखरूप' ही हैं। इस संसार तथा संसारके भोगोंको भगवान्‌ने 'असुखम्' (सुखरहित), 'दुःखालयम्' (दुःखोंके निवासस्थान) और 'दुःखयोनि' (दुःखोंकी उत्पत्तिके क्षेत्र) बतलाया है। इनमें सुख है ही नहीं। संसारमें जो मिला है, उसका बिछोह अवश्य ही होगा—'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः।'

पाण्डव साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके प्रिय थे, सहज कृपापात्र थे; पर जागतिक दृष्टिसे उन्होंने दुःख-ही-दुःख भोगे। बचपनमें ही कौरवोंसे दुर्व्यवहारकी प्राप्ति, लाक्षागृहमें जलनेसे बचकर भागना, छिपे रूपमें भीख माँगकर पेट भरना, जूएमें हार जाना, भरी सभामें धर्मपत्नी द्रौपदीके प्रति दुःशासनका दुर्व्यवहार, बारह वर्षका वनवास, द्रौपदीहरण, सालभर छिपकर नौकरी करना, युद्धमें सारे बन्धु-बान्धवोंका मारा जाना, द्रौपदीके एक भी पुत्रका न बचना, बन्धु-बान्धवहीन राज्य करना और हिमालयमें गलकर प्राणत्याग करना—सब दुःख-ही-दुःख तो हैं। पर भगवान्‌में कितना अटल विश्वास, कितनी प्रीति कि पाण्डवमाता देवी कुन्तीने भगवान्‌से विपत्ति देनेका ही वरदान माँगा। भाई! जगत्‌में कुछ भी सार नहीं है। यहाँ तो अतिथि या मुसाफिरकी-ज्यों रहना है और नट (अभिनेता) की भाँति भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये अपने जिम्मेका काम करना है। असली काम तो है—भगवान्‌का 'अखण्ड स्मरण।' यह दुःख तो कम होते-होते कुछ दिनों बाद मिट जायगा। पर जबतक संसार तथा संसारके भोगोंमें मोह है, तबतक नये-नये दुःख आते ही रहेंगे। छूटना तो उनसे है। शेष भगवत्कृपा।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गयादीनकी आदर्श स्वामिभक्ति

गयादीन कानपुरके पासके किसी गाँवका रहनेवाला बारी जातिका नौजवान था। कलकत्तेमें तीस रुपये मासिकपर जमादारी करता था। उस समय कलकत्तेमें करोड़ोंका विलायती कपड़ा बिकता था तथा अन्यान्य चीजें भी बहुत बिकती थीं। माल प्रायः आठ दिनसे लेकर महीनेभरकी उधारीपर दिया जाता था। मालके रुपये वसूल करनेके लिये हरेक दूकानदार अपने कामके अनुसार एक या बहुत-से जमादार रखते थे। ये जमादार अधिकांशमें उत्तरप्रदेश तथा बिहारके होते थे। बड़े ही ईमानदार, परिश्रमी, स्वामिभक्त। दिनमें दूकानपर काम करते, रातको रुपये वसूलीका काम करते, आधी रातके बाद दूकानके आगे सोकर पहरेदारका काम करते। उस समय न इतने बैंक थे, न चेकोंका चलन था। कुल भुगतान नगदका होता था। नोट कम थे, चाँदीके रुपये ज्यादा। भुगतान अधिकांश रातको नौ बजेसे बारह बजेतक होता और हजारों जमादार लाखों-लाखों रुपये—कंधोंपर स्वयं थैली उठाये या भारी होनेपर कुली (झाखा मुटिया) की टोकरीमें रखे अँधेरी गलियोंसे निर्भय गुजरते। राहजनी, डाका आदिकी कहीं कल्पना भी नहीं थी। थैलियाँ लाकर मालिकोंको दे देते। मालिक लोग दूकानोंमें थैलियाँ रखकर दूकान बंदकर घर चले जाते। जमादार दूकानके बाहर सो जाते। सबेरे थैलियाँ सँभाली जातीं। एक पैसेकी भी गड़बड़ी नहीं। ऐसा सत्ययुगी जमाना था।

गयादीन बाबू चम्पालालजीके यहाँ जमादार था। एक दिन किसी कारणसे बाबू नाराज हो गये; यद्यपि गयादीनका दोष उतना नहीं था, पर बाबूने आवेशमें आकर उसे नौकरीसे अलग कर दिया। वह दूसरी नौकरीकी तलाशमें लगा। मालिकने कालीचरन नामक एक दूसरे जमादारको रख लिया। अब तगादा-वसूलीका काम कालीचरन करने लगा।

पहला युद्ध समाप्त हो चुका था। लोगोंमें कुछ बेईमानी आरम्भ हो गयी थी, पर बहुत कम। कहीं साल-छः महीनेमें एकाध लूट-खसोटकी घटना होती थी, पर लोग सावधान हो चले थे। एक दिन रात्रिको कालीचरन बीस हजार रुपये अंदाजका भुगतान लिये बाँसतल्ला गलीमें मुड़ रहा था कि पीछेसे एक आदमीने धक्का दिया और थैली छीनकर भागने लगा। कालीचरन पीछे दौड़ा। इतनेमें ही उसी रास्तेसे गयादीन जा रहा था। उसने अपने पुराने मालिकके नये जमादार कालीचरनको दौड़ते देखा। वह मामला समझ गया और वह भी दौड़ा। उस चोरके दो साथी और आ गये थे। गयादीनके वहाँतक पहुँचनेके पहले ही चोरोंने कालीचरनको चौथाई हिस्सा देनेका लोभ देकर राजी कर लिया था। इसी बीच गयादीन वहाँ पहुँच गया। बलवान् नौजवान था। इसने चोरके हाथसे थैली छीन ली। देखा तो तीनों चोर गयादीनके गाँवके ही 'पासी' थे। उन्होंने गयादीनसे कहा—'भाई! तुम क्यों बीचमें पड़ते हो? तुम तो हमारे ही गाँवके हो। हमलोग गरीब हैं। इस जमादारको तो हमने राजी कर लिया है। तुम्हारा भी एक हिस्सा रहा। तुम हल्ला मत मचाओ।'

गयादीन तो यह सुनकर आगबबूला हो गया। बोला—'मैं कालीचरन-जैसा नमकहराम नहीं हूँ। मालूम होता है, यह असली माँ-बापका लड़का नहीं है। मैंने बाबू चम्पालालजीका नमक खाया है, प्राण रहते उनका धन नहीं लुटने दूँगा।' यों कहकर उसने चोरोंको तथा कालीचरनको जोरसे ललकारा और कहा कि 'जल्दी भाग जाओ, नहीं तो जीते नहीं छोड़ूँगा।' वे चारों ही शरीरसे कमजोर थे। चोर यों भी कमजोर होता ही है। गयादीनकी ललकारसे वे काँप गये। इसी बीच चार-पाँच दूसरे जमादार भुगतान लिये उधरसे ही आ निकले और क्या मामला है, जाननेको ठहर गये। उनको देखकर वे चारों भाग गये। गयादीन उनमेंसे एक जमादारको साथ लेकर थैली लिये चम्पालालजीके पास पहुँचा। सारी बातें सुनकर चम्पालालजी रो पड़े और गयादीनको हृदयसे लगा लिया। कहना नहीं होगा कि गयादीन दूने वेतनपर रख लिया गया। साथवाले जमादारको भी चम्पालालजीने कुछ इनाम दिया। धन्य गयादीनकी स्वामिभक्ति!

—बिलासराय अग्रवाल

(२)

ईमानदारी

(क)

बात सन् १९६६ की है। मेरे पिताजी (श्रीगङ्गालालजी शर्मा) नयी दिल्ली नगरपालिकाके दफ्तरमें सुपरवाइजर हैं। वे शुरूसे ही बड़े सज्जन तथा धर्मात्मा हैं। सचाई तथा ईमानदारीको ही अपना धर्म समझते आये हैं।

एक बार जब पिताजी मजदूरोंको वेतनके रुपये बाँटनेके लिये दफ्तरमें रुपये लेने गये और खजांचीको दस हजार रुपये देनेको कहा। खजांचीने भूलसे ग्यारह हजार दे दिये। हजार रुपयेका एक बंडल अधिक दे दिया। पिताजीने पैसे गिने तो एक हजार रुपये अधिक थे। उनके दिलमें किसी प्रकारका कोई पाप नहीं आया और उन्होंने तुरंत हजार रुपये वापस कर दिये। खजांची अपने भाग्यकी और पिताजीकी ईमानदारीकी सराहना करने लगा।

—जितेन्द्र

(ख)

इन दिनों यहाँकी नहरमें दूर-दूरसे आकर काफी मजदूर मिट्टीका काम कर रहे हैं। उन मजदूरोंको मजदूरी बाँटनेके लिये 'देवीलाल माँझी' नामक एक सज्जन अपने मालिकसे दिनाङ्क २। ६। ६९ संध्याको सौ-सौ रुपयोंके पंद्रह नोटोंके रूपमें पंद्रह सौ रुपये लाये। दस नोट एक थाकमें रक्खे और पाँच दूसरी थाकमें। फिर, स्थानीय खादी-भण्डारके कार्यकर्ता श्रीउग्रनाथ झाजीके पास नोट भुनाकर खुदरा रुपये लेने गये। झाजीके पास उस समय खुदरा नहीं थे, इससे उन्होंने इन्कार कर दिया। देवीलाल लौट गये, पर भूलसे पाँच सौ वाली थाक वहीं छोड़ गये। दूसरी जगह जाकर जब नोट भुनानेके लिये नोट देखे तो पाँच सौ वाली थाक नहीं मिली। अब तो उनके होश उड़ गये। वे झाजीके पास गये थे, इस बातको बिल्कुल भूल गये। जहाँ-जहाँ पहले गये थे, वहाँ जाकर खोजा तो नोट नहीं मिले। निराश-उदास होकर हमलोगोंको अपनी दर्द-भरी कहानी सुनाने लगे।

उधर जब झाजीको अपने कार्यसे फुरसत मिली तो उन्होंने पाँच सौके नोट पड़े देखे। वे जान गये कि नोट माझीके ही हैं। तुरंत लेकर खोजते हुए वहाँ आये। देवीलालको झाजीकी याद ही नहीं थी। वे कह रहे थे नोट कहीं मुझसे गिर गये। झाजी चाहते तो नोट पचा जाते। पर 'कल्याण' आदि धार्मिक साहित्यके पढ़नेके कारण उनका मन साफ था। उन्होंने पाँच सौके नोट तुरंत देवीलालको दे दिये। देवीलालके नेत्र कृतज्ञतासे छलछला आये। उन्होंने स्थानीय कीर्तनभवनके लिये एक दरी खरीदनेको, जिसकी आवश्यकता थी, पचास रुपये दिये। धार्मिक साहित्यके अध्ययनका यह प्रत्यक्ष प्रभाव है।

—अभयकान्तलालदास, बेकुआ बाजार (सरसा)

(३)

लड़कीकी रक्षा

कुछ पुरानी बात है। अठारह वर्षकी बिना मा-बापकी सुन्दर सुशील लड़की शारदा अपने चाचाके पास रहती थी। चाची बहुत अच्छी थी। उसीने शारदाको पाला था। पर वह दो वर्ष पूर्व हैजेसे मर गयी थी। चाचा टोरमल सदाचारी नहीं था। कमाई थी नहीं, खर्च ज्यादा। एक नानगराम नामक लगभग साठ वर्षका आदमी था। काफी पैसे पास थे। पर वह टी० बी०का रोगी था और बड़ा ही कमजोर था। उसकी स्त्रीका देहान्त हो चुका था। लेकिन उसमें विषय-वासना प्रबल थी। वह विवाह करना चाहता था, पर बूढ़े मरणासन्न रोगीको कौन लड़की दे ?

पता लगाते-लगाते उसने टोरमलको बुलाया और बीस हजार रुपये देकर शारदाका विवाह उसके साथ कर देनेको टोरमलको राजी कर लिया। विवाहकी तिथि निश्चित हो गयी। शारदा सयानी हो गयी थी। उसे पता लगा तो वह बहुत ही घबरायी। चार दिनोंके बाद ही विवाह होनेवाला था। दूर रिश्तेमें उसके एक वृद्ध मामा होते थे। बड़े भले आदमी थे। बखतावरमल नाम था। एक दिन शारदा उनसे मिली और रो-रोकर उसने अपनी सारी बात सुनायी। बखतावरमलने उसको आश्वासन देकर कहा कि 'तुम घबराओ नहीं, मैं टोरमलजीको समझाऊँगा। वे मान गये तो ठीक है, नहीं तो दूसरा उपाय किया जायगा। तुम्हारा यह विवाह मैं नहीं होने दूँगा।'

बखतावरमलजीने जाकर टोरमलको बहुत करुणापूर्ण भाषामें समझाया—'आपकी पाली-पोसी हुई बच्ची है। इसको

नरकमें मत ढकेलिये।' पर रुपयेका लोभी वह क्यों मानने लगा। लेकिन उसने सोचा कि विवाह यहाँ न करके कहीं आसपासके गाँवमें करना चाहिये। इसीके अनुसार स्थान निश्चय हो गया और नानगरामको सब बातें टोरमलने समझा दीं।

घरकी बात—शारदा चौकन्नी थी ही, उसको पता लग गया। उसने बखतावरमलको सब समझा दिया। बखतावरमल कुछ अच्छे विचारके सुधारक नवयुवकोंसे मिले। उन नवयुवकोंने वरकी तलाश की। बाबू लखमीचंदजीके तेईस सालके लड़के रामप्रकाशकी स्त्री कुछ दिन पहले मर गयी थी। लखमीचंदजी बहुत अच्छे विचारके पैसेवाले प्रतिष्ठित व्यापारी थे। वे अच्छी लड़कीकी खोजमें थे, दहेजकी नहीं। नवयुवकोंने जाकर उनको राजी कर लिया। वही तिथि निश्चित हो गयी। लखमीचंदजीने कहा—'लड़की समयपर जरूर आ जानी चाहिये। कहीं हमारी बदनामी न हो।' इन्होंने उनको वचन दे दिया। योजना बनी और लड़की शारदाको सारा कार्यक्रम समझा दिया गया। जिस गाँवमें विवाह होना था, वहाँ टोरमल तथा नानगरामकी पार्टी पहुँच गयी। वहीं नियत समयपर बखतावरमल तथा छः युवक नियत स्थानपर पहुँच गये। कोरथका काम होते ही शारदा लघुशंकाके बहाने बगलकी बाड़ीमें गयी। वहाँ बखतावरमल मौजूद थे। वे लड़कीको लेकर बगलके एक घरमें चले गये। उसमें एक बड़ा कमरा था। उसमें शारदाको बंद करके दरवाजेपर ताला लगाकर बखतावरमल वहाँ बैठ गये। उस कमरेमें पीछेकी ओर एक दरवाजा था। वह खुला था। शारदा उसमेंसे बाहर निकल गयी। वहाँ सड़कपर एक घोड़ागाड़ी तथा तीन युवक मौजूद थे। तुरंत गाड़ीमें बैठाकर वे उसे शहरकी ओर ले गये। यह निश्चय था कि गाड़ी जबतक शहरमें न पहुँच जाय, तबतक हर हालतमें बखतावरमल दरवाजेपर बैठे रहेंगे।

इधर शारदा नहीं दिखायी दी, तब हल्ला मचा। टोरमलने कहा—'कहीं बखतावरमल भगा न ले गया हो।' गाँवके एक आदमीने बताया कि एक बूढ़े आदमीके साथ लड़की अमुक मकानमें गयी है। नानगरामके आदमी वहाँ पहुँचे। देखा, बखतावरमल एक कमरेके ताला बंद किये बाहर बैठे हैं। उन लोगोंने उनसे पूछा, तब बखतावरमलने बताया कि 'लड़की इस कमरेमें बंद है, पर मैं खोलूँगा नहीं।' चाभी कहीं छिपा दी थी। नानगरामके आदमियोंने ताला तोड़नेकी कोशिश की, फिर बखतावरमलको गाली देना तथा मारना शुरू किया। उन्होंने बचावकी चेष्टा की, पर वे लोग ज्यादा थे। अतः मार तो पड़ी ही। पर वे दृढ़ रहे। इतनेमें तीन युवकोंने सामनेसे आकर बखतावरमलको छुड़ा लिया। ताला खोल दिया गया, पर शारदा तो उसमें थी ही नहीं। खोज-खाजकर रह गये। इधर घोड़ागाड़ी तैयार थी। बखतावरमलको लेकर तीनों युवक गाड़ीमें सवार होकर चले गये। इधर ये देखते ही रह गये!

उधर योजनाके अनुसार शारदा सीधी विवाह-मण्डपमें पहुँच गयी। बाहर पहरे लग रहे थे। पण्डितजी सारी सामग्री लिये तैयार थे। वर रामप्रकाश मण्डलमें विराजित थे। शारदाके पहुँचते ही विवाह सविधि सकुशल सम्पन्न हो गया।

टोरमल तथा नानगराम निराश लौट आये और सब बातोंका पता लगनेपर हाथ मलते ही रह गये। यों सहृदय बूढ़े बखतावरमलने लड़कीकी रक्षा की।

—हरमुखराय जोशी

(४)

कुछ अनुभूत प्रयोग

१

नासूरकी दवा

भाँगके पौधेके पत्तोंको पीसकर टिकिया बनाकर बाँधनेसे नासूर अच्छा हो जाता है। उसीके पत्तोंसे जखमको पोंछना चाहिये। खेतपर काम करनेवाले एक मुसलमान मजदूरके मुँहपर आँखके नीचे नासूर था। इस प्रयोगसे अच्छा हो गया।

—श्यामबिहारीलाल पेन्शनर, निलकनगर, बी९०सूर्यमार्ग, जयपुर ४ (राजस्थान)

२

खूनके दस्तकी दवा

किसी भाईको खूनके मरोड़े दस्त आते हों, किसी भी

दवासे आराम न होता हो, उसपर इसका प्रयोग करके देखें। एक महात्माका दिया हुआ नुस्खा है।

एक कोरी छोटी हाँड़ी या परवेमें एक पाव ताजा जल डाल दें और उसी समय छीलकर लाया हुआ जामुनके पेड़का थोड़ा गूदा उस पानीमें डाल दें। सुबहका डाला हुआ शामको और रात्रिका डाला हुआ सुबह हाथसे खूब मसलकर बिना कुछ डाले कपड़ेसे छानकर पिला दें। बरतनको बाहर खुली हवा या ओसमें रखना चाहिये। गूदा उसी समयका ताजा लाना चाहिये।

कितना ही पुराना रोग हो, दो खूराकमें ही ठीक हो जाता है। तीसरी खूराककी जरूरत प्रायः नहीं पड़ती। इस प्रयोगसे बहुत लोगोंको लाभ हो चुका है।

—माधोराम आलूवाला, दर्शनीगेट, देहरादून। उ० प्र०

३

मोतियाबिन्दका एक सरल प्रयोग

पाँच वर्ष पूर्वकी बात है—मेरे एक मित्र श्रीरामदासकी आँखोंमें मोतिया हो गया था। डाक्टरोंने ऑपरेशनकी सलाह दी। सौभाग्यवश मेरे उन मित्रको इन्हीं दिनों किसी कामसे दिल्ली जाना पड़ा। वहाँ उनको एक सज्जन मिले, जिन्होंने एक ब्राह्मणके द्वारा प्राप्त मोतिया-रोग-नाशका एक बहुत ही सरल उपाय यह बतलाया कि प्रातःकाल उठते ही जस्ताकी सलाईमें अपनी जीभका थूक लगाकर सलाईको तीन बार आँखोंमें फेरें।

मेरे मित्रने प्रयोग शुरू कर दिया और कुछ ही दिनोंमें मोतिया साफ हो गया। इस समयतक उनकी आँखें ठीक हैं और वे प्रतिदिन आठ-नौ घंटे लिखने-पढ़नेका काम करते हैं। इस समय दिल्लीमें हैं। मेरा नेत्र-रोग-चिकित्सक महोदयोंसे नम्र निवेदन है कि वे इस प्रयोगके विषयमें विशेष जाँच करके इसपर प्रकाश डालें। मेरी समझसे मोतियाके शुरुआतमें इस प्रयोगसे लाभ अवश्य होता है।

—श्रीकृष्णकुमार, नं० ११२१। ५ सत्यनारायण सोसाइटी, बंगला नं० २, साबरमती, अहमदाबाद ५

४

अर्श (बवासीर) की सफल दवा

(क)

कैसा ही पुराना और खूनी बवासीर हो, 'डीकामाली' (Deekamali) अथवा 'मीकामाली', जो पसारीके यहाँ मिलती है। पीला रंग और कुछ खरा-सा स्वाद होता है। गन्ध भी आती है। एक मासा चूर्ण करके देशी नमक मिलाकर फाँक लें और ऊपरसे ठंढा जल पी ले। शामको एक ही खूराकसे सुबह लाभ होता है। यदि एक खूराकसे न ठीक हो तो दो-तीन दिन सुबह-शाम लेते रहें। इससे कोई नुकसान नहीं होता। ओषधि अनुभूत है। दस पैसेमें दो-तीन खूराक बनती है। सस्ती समझकर प्रयोगसे चूके नहीं, अवश्य लाभ होता है। विश्वास करें।

—बनवारीलाल भार्गव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, एडवोकेट, राघौगढ़ (गुना) मध्यप्रदेश

(ख)

बवासीर बादी हो या खूनी—निम्नलिखित प्रयोग दोनोंमें लाभ करता है। मोठ २५० ग्राम लेकर उसके बराबर दस भाग कर लें और प्रतिदिन सबेरे शौच-कुल्ला-दाँतौन करनेके बाद दस दिनोंतक लगातार एक-एक भाग अर्थात् २५ ग्राम मोठ अच्छी तरह चबाकर थोड़ा-सा ठंढा जल पी लें। उसके एक घंटे बाद दूध, चाय, नास्ता वगैरह जो भी रोज लेते हों, सो लें। मोठ राजस्थानमें मूँग-जैसा ही (मूँगसे कुछ बड़ा) होता है। सब जानते हैं। जो लोग दाँतके दर्द या बुढ़ापेमें दाँत न होनेके कारण न चबा सकें, वे सिलपर लोढ़ासे मोठोंका चूरा करके ठंढे जलके साथ ले लें। इस प्रयोगसे बहुत लोगोंको लाभ हुआ है। किन्हींको कुछ पूछना-जानना हो तो नीचे लिखे पतेपर पत्र-व्यवहार करें।

—श्रीहरिराम लडिया (सरदारशहरवाला)
द्वारा श्रीसूरजमल हरसुखराय, १९२ जमुनालाल बजाज स्ट्रीट, तीसरा तल्ला, कलकत्ता ७

दशहरे और दीपावलीके शुभ त्योहारोंपर

भगवान् श्रीविष्णु, श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीशिव तथा भगवती लक्ष्मी, दुर्गा आदिके भव्य दर्शन

गीताप्रेस, गोरखपुरकी सुन्दर-सुन्दर चित्रोंसे सुसज्जित चित्रावलियाँ मँगवाइये

प्रत्येकमें १५×२० साइजके बढ़िया आर्टपेपरपर छपे हुए २ सुनहरे तथा ८ बहुरंगे सुन्दर चुने हुए चित्र हैं। टाइटल मोटे कागजपर छापकर लगाया गया है।

साइज १५×२० नं० १, मूल्य रु० ३.५०, पैकिंग और डाकखर्च रु० १.३०

साइज १५×२० नं० २, मूल्य रु० ३.५०, पैकिंग और डाकखर्च रु० १.३०

साइज १५×२० नं० ३, मूल्य रु० ३.५०, पैकिंग और डाकखर्च रु० १.३०

साइज १५×२० नं० ४, मूल्य रु० ३.५०, पैकिंग और डाकखर्च रु० १.३०

उपर्युक्त १५×२० साइजके—एक चित्रावलिका पैकिंग और डाकखर्चसहित मूल्य रु. ४.८०, दो चित्रावलिका पैकिंग और डाकखर्चसहित मूल्य रु. ८.६०, तीन चित्रावलिका मूल्य रु. १०.५०, बाद कमीशन ६५ पै० बाकी रु. ९.८५ पैकिंग और डाकखर्च रु. १.८५ कुल रु. ११.७०। एवं चारों चित्रावलिका मूल्य १४ रु., बाद कमीशन ८७ पै० बाकी रु. १३.१३ पैकिंग और डाकखर्च रु० २.१७, कुल रु. १५.३०।

साइज ११×१४॥ नं० १, इसमें १२ सुन्दर तिरंगे चित्र हैं। मूल्य रु. २.५०, पैकिंग और डाकखर्च १.१०

प्रत्येकमें १०×७॥ साइजके बढ़िया आर्ट पेपरपर छपे हुए २ सुनहरे तथा १८ बहुरंगे सुन्दर चुने हुए चित्र हैं। टाइटल मोटे कागजपर छापकर लगाया गया है।

साइज १०×७॥ नं० १, मूल्य रु. १.६५, पैकिंग और डाकखर्च १.१५

साइज १०×७॥ नं० २, मूल्य रु. १.६५, पैकिंग और डाकखर्च १.१५

साइज १०×७॥ नं० ३, मूल्य रु. १.६५, पैकिंग और डाकखर्च १.१५

उपर्युक्त १०×७॥ साइजके—एक चित्रावलिका पैकिंग और डाकखर्चसहित रु० २.८०, दो चित्रावलिका पैकिंग और डाकखर्चसहित रु० ४.६० एवं तीन चित्रावलिका पैकिंग और डाकखर्चसहित रु० ६.३५।

विशेष सूचना

१५×२० साइजकी चारों चित्रावलियाँ, ११×१४॥ की एक चित्रावलि तथा १०×७॥ की तीनों, कुल आठ प्रतियाँ एक साथ लेनेपर उनके मूल्य रु० २१.४५, बाद कमीशन रु० १.३५, बाकी रु० २०.१०, पैकिंग-डाकखर्च रु० ३.८५, कुल रु० २३.९५ भेजने चाहिये।

नोट—अधिक चित्रावलियाँ एक साथ मँगवानेपर रेलवे स्टेशनका नाम अवश्य लिखें।

नयी पुस्तक! *प्रकाशित हो गयी!!*

मेरे पाँच महाभय

[देशकी वर्तमान स्थितिपर गम्भीर विचार]

(लेखक—बाबू श्रीप्रकाश, भूतपूर्व राज्यपाल, बंबई)

आकार २०×३० सोलह पेजी, पृष्ठ-संख्या २४, मूल्य १५ पैसे, डाकखर्च अलग।

देशकी वर्तमान परिस्थितिपर गम्भीर विचार करनेपर महान् विचारक सम्मान्य लेखक महोदयको जो 'पाँच महाभय' दिखायी दिये, उनका स्पष्टीकरण करते हुए इस लेखमें उनसे बचनेके सुन्दर उपाय बताये हैं। बहुत लोगोंका बड़ा आग्रह था, इसीलिये यह लेख पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया है। इसे पढ़ें, मनन करें और हिंदूधर्म तथा आर्य संस्कृतिकी रक्षाके लिये इसका प्रचार करें।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

'कल्याण'का आगामी विशेषाङ्क 'अग्निपुराण-अङ्क'

'कल्याण' का आगामी विशेषाङ्क 'अग्निपुराणाङ्क' प्रकाशित करनेका निश्चय किया गया है। सूचना पहले दी जा चुकी है। अनुवादका कार्य चल रहा है। शीघ्र सम्पन्न हो जानेकी आशा है। अग्निपुराणसम्बन्धी महत्त्वकी कोई सामग्री किन्हींके पास हो तो भेजनेकी कृपा करें। अग्निपुराण सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण लेख भी कुछ रहेंगे। मर्मज्ञ विद्वान् ऐसे लेख कृपया भेजें।

इसके अतिरिक्त 'शोणभद्रमाहात्म्य' तथा दानादि धर्मसम्बन्धी बहुत-सी पुस्तकें 'अग्निपुराण' एवं 'वह्निपुराण'के नामसे हस्तलिखित जहाँ-तहाँ देखी गयी हैं। इनको अग्निपुराणके खिलांश आदिके रूपमें माना गया है। इस प्रकारकी कोई भी पुस्तक या सामग्री जो अग्निपुराणसे सम्बद्ध हस्तलिखित वा छपी हुई किसी भी रूपमें किन्हीं सज्जनके पास हो तो वे कृपापूर्वक भेजनेका कष्ट करें। काम हो जानेके बाद माँगनेपर पुस्तकें लौटायी जा सकती हैं। डाकखर्च भी दिया जायगा।

सम्पादक—कल्याण, गीतावाटिका

पो० गीतावाटिका, गोरखपुर—उ० प्र०

मूल्यवान् सामग्री भेजनेके लिये निवेदन

पूर्वसूचनाके अनुसार 'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र-अंक' विशेषाङ्क इस बार नहीं प्रकाशित होगा। पर जिन सज्जनोंके पास मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र सम्बन्धी जो कुछ भी बहुमूल्य सामग्री हों, अनुभूत सकाम या निष्काम सच्चे प्रयोग हों, वे कृपापूर्वक शीघ्र उन्हें भेज दें। सात्त्विक सामग्री—ऐसे मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र जो परमार्थसाधनमें सहायक हों, जिनसे अन्तःकरणकी शुद्धि होकर भगवत्तत्त्वकी उपलब्धि होती हो, विशेषरूपसे भेजनेकी कृपा करें।

सम्पादक—'कल्याण', गीतावाटिका, पो० गीतावाटिका, गोरखपुर, उ० प्र०

'गीताप्रेस-सेवादल'का राजस्थान-अकाल गो-सेवा-कार्य

राजस्थानमें कहीं-कहीं वर्षा हो गयी है, इसलिये गो-सेवा-सहायताके कार्य प्रायः कम होते जा रहे हैं; क्योंकि गौओंके मालिक अब अपना-अपना गोधन लौटा ले जा रहे हैं। कुछ ऐसी गायें अवश्य रहेंगी, जिनके कोई मालिक नहीं होंगे। साथ ही बीज आदि बाँटनेका काम शुरू हो रहा है। पर इस समय गौ-सहायतार्थ उतनी जरूरत नहीं रही है, इसलिये गीताप्रेस-सेवादलको कोई सज्जन सहायतार्थ रुपये बिना दूसरी सूचनाके न भेजें। अबतक जिन लोगोंने बिना ही माँगे सहायता की, वे भगवान्‌के कृपापात्र हैं और हम उनके कृतज्ञ हैं। जोधपुरकी ओर वर्षा नहीं हुई है; यदि न हुई तो बड़ा संकट होगा।

—गीताप्रेस-सेवादल, गीताप्रेस, गोरखपुर

नम्र प्रार्थना

भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका शरीर आजकल विशेषरूपसे शिथिल है तथा मस्तक भी ठीक काम नहीं करता है। वे प्रायः मिलते-जुलते नहीं हैं। इसलिये उनसे व्यक्तिगत अत्यन्त ही अनिवार्य कारणके बिना पत्र व्यवहार न करें, न मिलनेको पधारें। बड़ी कृपा होगी।

—व्यवस्थापक